दृष्टि The Vision

एडिटोरियल

(संग्रह)

जनवरी भाग-1

2021

दृष्टि, 641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
फोन: 8750187501
ई-मेल: online@groupdrishti.com

अनुक्रम

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम 5

- कुशल कार्यान्वयन की चुनौती 5
- ऊर्जा क्षेत्र में एकीकृत शासन व्यवस्था की आवश्यकता 6
- दल-बदल विरोधी कानून 8
- जनप्रतिनिधि और आचार संहिता 10
- केंद्र-राज्य विवाद और अनुच्छेद-131 13
- भारतीय संविधान और संवैधानिक व्याख्या 15
- राजनीति का अपराधीकरण 17

आर्थिक घटनाक्रम 20

- सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण 20
- आर्थिक मंदी: कारण और उपाय 22
- कोयला खनन का विनियमन 23
- मुद्रास्फीति और भारतीय अर्थव्यवस्था 25
- मेक इन इंडिया': सफल या असफल 28
- बजट: चुनौती और संभावना 30
- कपास उद्योग और बीटी-कपास 32
- एयर इंडिया का निजीकरण 34

अंतर्राष्ट्रीय संबंध 37

- अमेरिका-ईरान संकट 37
- अमेरिका-चीन तनाव के नए आयाम 38
- भारत-ब्राज़ील संबंध 40
- इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष 42

नोट :

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी 46

➢ वैज्ञानिक क्रांति का दशक 46

➢ स्वास्थ्य आपातकाल- पोलियो 48

➢ भारत की 'सॉफ्ट पॉवर' 50

➢ फ्रंटियर प्रौद्योगिकी 52

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी 54

➢ भारत वन स्थिति रिपोर्ट और वन संरक्षण 54

➢ वनाग्नि: एक वैश्विक चिंता के रूप में 56

सामाजिक मुद्दे 59

➢ आवासीय गरीबी और भारत 59

आंतरिक सुरक्षा 61

➢ मॉब लिंचिंग: कारण और प्रभाव 61

दृष्टि The Vision

नोट :

नोट :

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम

कुशल कार्यान्वयन की चुनौती

1985 में पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने कहा था कि "सरकार द्वारा खर्च किये गए प्रत्येक 1 रुपए में से मात्र 15 पैसे ही गरीबों तक पहुँच पाते हैं।" भारत के सबसे युवा प्रधानमंत्री का यह कथन स्पष्ट तौर पर पंक्ति के अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति के कल्याण हेतु निर्मित योजनाओं के कुशल कार्यान्वयन की महत्ता को दर्शाता है। भारत में हमेशा से ही सरकारों ने गरीबों और समाज के हाशिये पर मौजूद लोगों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के लिये योजनाओं का निर्माण किया है, परंतु इन योजनाओं के निर्माण में कभी भी उनके कार्यान्वयन पर ध्यान नहीं दिया गया और शायद यही कारण है कि कल्याण के उद्देश्य से बनाई गई विभिन्न योजनाएँ बुनियादी सुविधाओं तक आम लोगों की पहुँच भी सुनिश्चित नहीं कर पाई हैं।

योजनाओं का अकुशल कार्यान्वयन

यह पहली बार नहीं है जब किसी सरकार ने कुछ महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रमों की शुरुआत की है। नेहरूवादी युग से ही सरकारें गरीबों का कल्याण सुनिश्चित कर देश को और अधिक समृद्ध बनाने का प्रयास कर रही हैं, परंतु इतनी अधिक योजनाओं के बावजूद उनका प्रभाव काफी सीमित दिखाई देता है। किसानों द्वारा आत्महत्या, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभाव और बुनियादी सुविधाओं की कमी जैसे विभिन्न घटनाक्रम देश में विकास योजनाओं की निराशाजनक कहानी बयाँ करते हैं। इस तथ्य के पीछे मुख्यत: दो कारण माने जाते हैं:

- सरकार की अक्षमता:

सरकार द्वारा निर्मित विभिन्न योजनाओं में गरीबों का कल्याण एवं उत्थान का लक्ष्य स्पष्ट दिखाई देता है, परंतु वे सभी कार्यान्वयन के स्तर पर असफल हो जाती हैं। उदाहरण के लिये देश में महिला सशक्तीकरण और महिलाओं के उत्थान हेतु कई योजनाएँ जैसे- बेटी बचाओ-बेटी पढाओ, स्वाधार गृह योजना, नारी शक्ति पुरस्कार और महिला ई-हाट आदि बनाई गई हैं, परंतु इन सब के बावजूद देश में महिलाओं की स्थिति में कुछ खास सुधार नहीं आ पाया है और आज भी उन्हें अपने अधिकारों हेतु संघर्ष करना पड़ता है। ऐसे में प्रश्न यह उठता है कि कौन से कारण हैं जिनके परिणामस्वरूप हम योजना के कार्यान्वयन स्तर पर उनकी सफलता सुनिश्चित नहीं कर पाते? विशेषज्ञ इसके पीछे निगरानी तंत्र का अभाव, जवाबदेही की कमी और भ्रष्टाचार को मुख्य कारण के रूप में देखते हैं। उदाहरण के लिये CAG की वर्ष 2013 की रिपोर्ट के अनुसार, धन के गबन और हेराफेरी के कारण ही बिहार और कर्नाटक में मनरेगा योजना (MNREGA Scheme) सफल नहीं हो सकी थी।

- जागरूकता की कमी:

वर्ष 2018 में हुए एक अध्ययन में सामने आया था कि देश के लगभग 70 प्रतिशत युवाओं में रोज़गार को बढ़ावा देने हेतु सरकार द्वारा चलाए जा रहे बहुप्रचारित कौशल विकास कार्यक्रमों के बारे में जागरूकता की कमी है। ऐसे में जब तक योजना से संबंधित हितधारकों को ही उसकी सुस्पष्ट जानकारी नहीं होगी तब तक उस योजना के कुशल कार्यान्वयन को सुनिश्चित नहीं किया जा सकेगा।

उपाय

मौजूदा समय में ऐसी कई योजनाओं के उदाहरण हैं जिनके विश्लेषण से किसी भी योजना के कुशल कार्यान्वयन तंत्र के निर्माण संबंधी उपायों की खोज की जा सकती है। इस प्रकार के उपाय या मार्गदर्शक सिद्धांत किसी भी योजना के कार्यान्वयन पर लागू किये जा सकते हैं।

- अलग-अलग पदों पर आसीन लोगों की अलग-अलग प्राथमिकताएँ हो सकती हैं। किसी भी योजना के कुशल कार्यान्वयन के लिये आवश्यक है कि शासनिक पारिस्थितिकी तंत्र में मौजूद लोगों की प्राथमिकताओं और लक्ष्यों में एकरूपता लाई जाए। PM-CM-DM मॉडल इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण और परिवर्तनकारी कदम हो सकता है।
- जब लक्ष्य अपेक्षाकृत कठिन होता है तो लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कार्य कर रहे लोगों को वह असंभव सा प्रतीत होता है जिसके कारण वे अपने आप को लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अभिप्रेरित नहीं कर पाते और इस कार्य हेतु यथासंभव प्रयास भी नहीं करते। योजना के कुशल कार्यान्वयन हेतु आवश्यक है कि एक ऐसे दल का गठन किया जाए जो योजना के सफल कार्यान्वयन पर विश्वास करता हो और इस संदर्भ यथासंभव प्रयास कर सके।

नोट :

- योजना के संबंध में आम लोगों को जागरूक करना भी योजना की सफलता के लिये आवश्यक माना जाता है। योजना के संबंध में सभी स्तरों पर संवाद काफी आवश्यक होता है। इस कार्य हेतु स्वयंसेवकों अर्थात् वालंटियर्स का एक ग्रुप बनाया जा सकता है जो ज़मीनी स्तर पर योजना के संबंध में आम लोगों से संवाद कर सकें। साथ ही प्रसिद्ध हस्तियों को योजना से जोड़ना भी इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।
- योजना के कुशल कार्यान्वयन के लिये समय-समय पर उसकी प्रगति कार्यों का मूल्यांकन करना भी आवश्यक है। साथ ही योजना के संबंध में विभिन्न अनुसंधान को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। अनुसंधानों और मूल्यांकनों के परिणामों में योजना के संबंध में जो भी कमियाँ सामने आती हैं उन्हें सुधारा जाना भी उतना ही आवश्यक है।

निष्कर्ष

जितना महत्त्वपूर्ण किसी योजना का निर्माण होता है उतना ही महत्त्वपूर्ण उस योजना का कार्यान्वयन होता है और योजना के कुशल कार्यान्वयन के अभाव में योजना की सफलता सुनिश्चित नहीं की जा सकती। आवश्यक है कि उक्त मार्गदर्शक सिद्धांतों का पालन करते हुए विभिन्न योजनाओं के कार्यान्वयन पर गंभीरता से ध्यान दिया जाए ताकि समाज के हाशिये पर मौजूद लोगों का विकास भी संभव हो सके।

ऊर्जा क्षेत्र में एकीकृत शासन व्यवस्था की आवश्यकता

विश्व भर में ऊर्जा को सार्वभौमिक रूप से आर्थिक विकास और मानव विकास के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में मान्यता दी गई है। ऊर्जा क्षेत्र में भारत की भूमिका को इसी तथ्य से आँका जा सकता है कि वह अमेरिका, चीन और रूस के बाद दुनिया में ऊर्जा का सबसे बड़ा उपभोक्ता है। हालाँकि कुछ विशेषज्ञ मानते हैं कि भारत के ऊर्जा क्षेत्र की शासन व्यवस्था काफी जटिल है और यह भारत में ऊर्जा क्षेत्र के विकास में बाधा उत्पन्न कर सकती है। ऐसे में आवश्यक है कि हम भारत के ऊर्जा क्षेत्र की संरचना का विश्लेषण करते हुए यह विचार करें कि क्या देश में ऊर्जा से संबंधित विभिन्न मंत्रालयों और विनियामकों का एकीकरण किया जा सकता है?

ऊर्जा क्षेत्र में प्रशासनिक ढाँचे का मौजूदा स्वरूप

- वर्तमान में भारत के ऊर्जा क्षेत्र को नियंत्रित करने के लिये देश में 5 अलग-अलग मंत्रालय और विभिन्न नियामक संस्थाएँ मौजूद हैं।
- पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस, कोयला, नवीकरणीय ऊर्जा और परमाणु ऊर्जा के लिये देश में अलग-अलग मंत्रालय या विभाग मौजूद हैं। साथ ही हमारे पास विद्युत मंत्रालय और राज्य-स्तरीय निकाय भी हैं जो बिजली वितरण कंपनियों या DISCOMS को विनियमित करते हैं।
- इसके अलावा प्रत्येक प्रकार के ईंधन और ऊर्जा स्रोत के लिये अलग-अलग नियामकों की उपस्थिति इस क्षेत्र में कार्य को और अधिक जटिल बनाती है।
- पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस क्षेत्र के भी दो नियामक हैं (1) अपस्ट्रीम गतिविधियों के लिये हाइड्रोकार्बन महानिदेशालय (2) डाउनस्ट्रीम गतिविधियों के लिये पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस नियामक बोर्ड।

अपस्ट्रीम गतिविधियाँ

- अपस्ट्रीम गतिविधियाँ मुख्य रूप से तेल और प्राकृतिक गैस के अन्वेषण तथा उत्पादन के प्रारंभिक चरण से संबंधित होती हैं।

डाउनस्ट्रीम गतिविधियाँ

- डाउनस्ट्रीम गतिविधियाँ सामान्यत: तेल और प्राकृतिक गैस को अंतिम उत्पाद में बदलने की प्रक्रिया व वितरण से संबंध होती हैं।

क्यों आवश्यक है एकीकरण?

- अलग-अलग नियामकों के मध्य समन्वय का अभाव

देश के ऊर्जा क्षेत्र को नियंत्रित करने के लिये मौजूदा मंत्रालयों और विभागों के मध्य समन्वय स्थापित करना अपेक्षाकृत काफी कठिन कार्य है। ऊर्जा क्षेत्र में कार्यरत प्रत्येक मंत्रालय और विभाग के अपने-अपने लक्ष्य एवं प्राथमिकताएँ हैं और वे सिर्फ उन्हीं लक्ष्यों पर ध्यान केंद्रित करते हैं जिसके कारण ऊर्जा क्षेत्र के विकास हेतु निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में कठिनाई पैदा होती है। विभागों के मध्य बेहतर समन्वय स्थापित करने के मामले में भारतीय रेलवे द्वारा उठाया गया हालिया कदम एक अच्छा उदाहरण है जिसमें कुल आठ सेवाओं का एकीकरण किया गया ताकि 'विभागीयकरण' को समाप्त कर विभागों के मध्य बेहतर समन्वय स्थापित किया जा सके।

आँकड़ों की कमी

ऊर्जा क्षेत्र से संबंधित समग्र आँकड़ों का एकत्रीकरण भी एक बड़ी समस्या है। भारत में कोई भी एकल एजेंसी संपूर्ण और एकीकृत रूप से ऊर्जा क्षेत्र का डेटा एकत्र नहीं करती है। जहाँ एक ओर ऊर्जा के उपभोग से संबंधित आँकड़े मुश्किल से ही उपलब्ध हो पाते हैं, वहीं विभिन्न मंत्रालयों द्वारा एकत्रित पूर्ति पक्ष के आँकड़े भी काफी हद तक शक के दायरे में रहते हैं। हालाँकि सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय इस संबंध में आँकड़े एकत्र करने और सर्वेक्षण का कार्य करता है, परंतु वह भी किसी निश्चित अंतराल पर यह कार्य नहीं कर पाता।

अन्य देशों के मॉडल

- ऊर्जा की शासन व्यवस्था को लेकर विभिन्न देशों ने विभिन्न मॉडल अपनाए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, फ्राँस और यूनाइटेड किंगडम जैसे विकसित देशों में ऊर्जा क्षेत्र को एकल मंत्रालय या विभाग द्वारा प्रशासित अथवा नियंत्रित किया जाता है।
- कई देशों के शासन मॉडल में ऊर्जा मंत्रालय अथवा विभाग पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन, खानों और उद्योग जैसे अन्य संबंधित मंत्रालयों अथवा विभागों के साथ संयोजन में कार्य कर रहे हैं।
  - उदाहरण के लिये यूनाइटेड किंगडम (UK) में 'व्यापार, ऊर्जा और औद्योगिक रणनीति विभाग' है, फ्राँस में 'पर्यावरण, ऊर्जा और समुद्री मामलों का मंत्रालय' है, ब्राज़ील में 'खान एवं ऊर्जा मंत्रालय' है तथा ऑस्ट्रेलिया में 'पर्यावरण और ऊर्जा मंत्रालय' है।
- उक्त सभी उदाहरणों से ऊर्जा क्षेत्र की एकीकृत शासन व्यवस्था का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

केलकर समिति

- वर्ष 2013 में केलकर समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि 'कई मंत्रालय और एजेंसियाँ वर्तमान में ऊर्जा से संबंधित मुद्दों के प्रबंधन में शामिल हैं, जिससे समन्वय और संसाधनों के इष्टतम उपयोग की समस्या एक प्रमुख चुनौती के रूप में उभरी है इसलिये ऊर्जा सुरक्षा बढ़ाने के प्रयास भी कमज़ोर हो रहे हैं। अत: आवश्यक है कि विभिन्न एजेंसियों और मंत्रालयों का एकीकरण कर एक एकीकृत शासन व्यवस्था का निर्माण किया जाए।

राष्ट्रीय ऊर्जा नीति

- राष्ट्रीय ऊर्जा नीति (National Energy Policy-NEP) के मसौदे में नीति आयोग ने भी पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस (MoPNG), कोयला (MoC), नवीन एवं नवीकरणीय ऊर्जा (MNRE) एवं विद्युत मंत्रालय को मिलाकर एक एकीकृत ऊर्जा मंत्रालय बनाए जाने की वकालत की थी।
- हालाँकि इसमें परमाणु ऊर्जा विभाग (DAE) को शामिल नहीं किया गया था, क्योंकि यह देश की राष्ट्रीय सुरक्षा नीति का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।
- नीति आयोग ने DNEP में स्पष्ट किया था कि प्रस्तावित मंत्रालय के अंतर्गत ऊर्जा क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं से संबंधित विभिन्न एजेंसियाँ होंगी।
  - जैसे- ऊर्जा नियामक एजेंसी, ऊर्जा डेटा एजेंसी, ऊर्जा दक्षता एजेंसी, ऊर्जा योजना एवं तकनीकी एजेंसी, ऊर्जा योजना कार्यान्वयन एजेंसी और ऊर्जा अनुसंधान एवं विकास (R&D) एजेंसी।

एकीकृत शासन व्यवस्था के लाभ

- संसाधनों का इष्टतम प्रयोग

एकीकृत ऊर्जा मंत्रालय भारत को ऊर्जा सुरक्षा, स्थिरता और पहुँच के लक्ष्यों को पूरा करने हेतु सीमित संसाधनों का इष्टतम प्रयोग करने में सक्षम बनाएगा। वर्तमान व्यवस्था के तहत अलग-अलग मंत्रालयों और विभागों के कारण उपलब्ध सीमित संसाधनों का यथासंभव प्रयोग नहीं हो पाता है और संसाधन बर्बाद हो जाते हैं।

- निर्णय लेने की प्रक्रिया में तेज़ी आएगी

एकीकरण का एक अन्य लाभ यह होगा कि इसके परिणामस्वरूप देश के समग्र ऊर्जा क्षेत्र के विकास हेतु महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने की प्रक्रिया में तेज़ी आएगी।

- एकीकृत नीति तैयार करना संभव होगा

मौजूदा मंत्रालयों और विभागों के मध्य समन्वय के अभाव में एक एकीकृत और संपूर्ण ऊर्जा नीति का निर्माण जटिल एवं चुनौतीपूर्ण कार्य बन गया है, जो कि इस देश के ऊर्जा क्षेत्र में एक बड़ी बाधा बन सकता है। इस समस्या से मंत्रालयों के एकीकरण के माध्यम से निपटा जा सकता है।

नोट :

- गुणवत्तापूर्ण आँकड़ों की उपलब्धता

मंत्रालयों और विभागों के एकीकरण के माध्यम से ऊर्जा की मांग और पूर्ति के उच्च गुणवत्ता वाले आँकड़े उपलब्ध हो सकेंगे, जिनके माध्यम से देश के ऊर्जा क्षेत्र की सही स्थिति जानने और उसी के अनुसार, नीतियों का निर्माण करने में मदद मिलेगी।

इस संदर्भ में सरकार के प्रयास

- बीते कुछ वर्षों में मौजूदा सरकार ने देश के ऊर्जा क्षेत्र को एकीकृत करने की दिशा में कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं जिनमें नवीन एवं नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय और विद्युत मंत्रालय हेतु एक ही मंत्री की नियुक्त जैसे कदम उल्लेखनीय हैं।
- विशेषज्ञों ने सरकार के इस कदम की काफी सराहना की थी, क्योंकि उक्त दोनों मंत्रालयों के कार्य आपस में काफी हद तक जुड़े हुए हैं।
- यदि एक ही व्यक्ति दोनों मंत्रालयों का प्रमुख होगा तो इस संबंध में अब तक लंबित सभी मामलों को जल्द-से-जल्द सुलझाया जा सकेगा।

आगे की राह

- हालाँकि सरकार ऊर्जा क्षेत्र को एकीकृत करने की दिशा में यथासंभव प्रयास कर रही है, परंतु अभी भी रास्ता काफी लंबा है।
- ऊर्जा प्रशासन में सुधार को लेकर NEP की सिफारिशों को जल्द-से-जल्द लागू किया जाना चाहिये, साथ ही मौजूदा नौकरशाही ढाँचे पर सिफारिशों के कठोर प्रभाव को देखते हुए सावधानी बरतनी भी आवश्यक है।
- इस तरह का एक एकीकृत ऊर्जा मंत्रालय भारत को विश्व के साथ ऊर्जा क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों के मद्देनज़र कदम-से-कदम मिलाकर चलने में भी मदद करेगा।

दल-बदल विरोधी कानून

हाल ही में घोषित कर्नाटक विधानसभा उप-चुनाव के नतीजो के साथ ही दल-बदल विरोधी कानून की प्रासंगिकता पर भी प्रश्नचिह्न लगता दिखाई दे रहा है। बीते दिनों कर्नाटक विधानसभा अध्यक्ष द्वारा अयोग्य करार दिये गए लगभग सभी विधायक हालिया उप-चुनावों में जीत कर मंत्री पद प्राप्त करने वाले हैं। चुनावी लोकतंत्र का यह घटनाक्रम स्पष्ट तौर पर दल-बदल विरोधी कानून में बदलाव की ओर इशारा करता है, क्योंकि इस घटनाक्रम ने चुनावी दलों के समक्ष दल-बदल विरोधी कानून के दुरुपयोग का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है और संभव है कि ऐसी घटनाएँ भविष्य में भी देखने को मिलें।

दल-बदल विरोधी कानून क्या है ?

- वर्ष 1985 में 52वें संविधान संशोधन के माध्यम से देश में 'दल-बदल विरोधी कानून' पारित किया गया। साथ ही संविधान की दसवीं अनुसूची जिसमें दल-बदल विरोधी कानून शामिल है को संशोधन के माध्यम से भारतीय से संविधान जोड़ा गया।
- इस कानून का मुख्य उद्देश्य भारतीय राजनीति में 'दल-बदल' की कुप्रथा को समाप्त करना था, जो कि 1970 के दशक से पूर्व भारतीय राजनीति में काफी प्रचलित थी।
- दल-बदल विरोधी कानून के मुख्य प्रावधान:

  दल-बदल विरोधी कानून के तहत किसी जनप्रतिनिधि को अयोग्य घोषित किया जा सकता है यदि:
  - एक निर्वाचित सदस्य स्वेच्छा से किसी राजनीतिक दल की सदस्यता छोड़ देता है।
  - कोई निर्दलीय निर्वाचित सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।
  - किसी सदस्य द्वारा सदन में पार्टी के पक्ष के विपरीत वोट किया जाता है।
  - कोई सदस्य स्वयं को वोटिंग से अलग रखता है।
  - छह महीने की समाप्ति के बाद कोई मनोनीत सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।

  अयोग्य घोषित करने की शक्ति
- कानून के अनुसार, सदन के अध्यक्ष के पास सदस्यों को अयोग्य करार देने संबंधी निर्णय लेने की शक्ति है।
- यदि सदन के अध्यक्ष के दल से संबंधित कोई शिकायत प्राप्त होती है तो सदन द्वारा चुने गए किसी अन्य सदस्य को इस संबंध में निर्णय लेने का अधिकार है।

नोट :

दल-बदल विरोधी कानून के अपवाद

कानून में कुछ ऐसी विशेष परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है, जिनमें दल-बदल पर भी अयोग्य घोषित नहीं किया जा सकेगा। दल-बदल विरोधी कानून में एक राजनीतिक दल को किसी अन्य राजनीतिक दल में या उसके साथ विलय करने की अनुमति दी गई है बशर्ते कि उसके कम-से-कम दो-तिहाई विधायक विलय के पक्ष में हों। ऐसे में न तो दल-बदल रहे सदस्यों पर कानून लागू होगा और न ही राजनीतिक दल पर। इसके अलावा सदन का अध्यक्ष बनने वाले सदस्य को इस कानून से छूट प्राप्त है।

क्यों लाया गया दल-बदल विरोधी कानून?

- लोकतांत्रिक प्रक्रिया में राजनीतिक दल काफी अहम भूमिका अदा करते हैं और सैद्धांतिक तौर पर राजनीतिक दलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका यह है कि वे सामूहिक रूप से लोकतांत्रिक फैसला लेते हैं।
- हालाँकि आज़ादी के कुछ ही वर्षों के भीतर यह महसूस किया जाने लगा कि राजनीतिक दलों द्वारा अपने सामूहिक जनादेश की अनदेखी की जाने लगी है। विधायकों और सांसदों के जोड़-तोड़ से सरकारें बनने और गिरने लगीं।
- 1960-70 के दशक में 'आया राम गया राम' की राजनीति देश में काफी प्रचलित हो चली थी। दरअसल अक्तूबर 1967 को हरियाणा के एक विधायक गया लाल ने 15 दिनों के भीतर 3 बार दल-बदलकर इस मुद्दे को राजनीतिक मुख्यधारा में ला खड़ा किया था।
- इसी के साथ जल्द ही दलों को मिले जनादेश का उल्लंघन करने वाले सदस्यों को चुनाव में भाग लेने से रोकने तथा अयोग्य घोषित करने की ज़रूरत महसूस होने लगी।
- अंतत: वर्ष 1985 में संविधान संशोधन के ज़रिये दल-बदल विरोधी कानून लाया गया।

मौजूदा समय में कानून की प्रासंगिकता

पक्ष में तर्क

- दल-बदल विरोधी कानून ने राजनीतिक दल के सदस्यों को दल बदलने से रोक कर सरकार को स्थिरता प्रदान करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। 1985 से पूर्व कई बार यह देखा गया कि राजनेता अपने लाभ के लिये सत्ताधारी दल को छोड़कर किसी अन्य दल में शामिल होकर सरकार बना लेते थे जिसके कारण जल्द ही सरकार गिरने की संभावना बनी रहती थी। ऐसी स्थिति में सबसे अधिक प्रभाव आम लोगों हेतु बनाई जा रही कल्याणकारी योजनाओं पर पड़ता था। दल-बदल विरोधी कानून ने सत्ताधारी राजनीतिक दल को अपनी सत्ता की स्थिरता के बजाय विकास संबंधी अन्य मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने के लिये प्रेरित किया है।
- कानून के प्रावधानों ने धन या पद लोलुपता के कारण की जाने वाली अवसरवादी राजनीति पर रोक लगाने और अनियमित चुनाव के कारण होने वाले व्यय को नियंत्रित करने में भी मदद की है।
- साथ ही इस कानून ने राजनीतिक दलों की प्रभाविता में वृद्धि की है और प्रतिनिधि केंद्रित व्यवस्था को कमज़ोर किया है।

विपक्ष में तर्क

लोकतंत्र में संवाद की संस्कृति का अत्यंत महत्त्व है, परंतु दल-बदल विरोधी कानून की वज़ह से पार्टी लाइन से अलग किंतु महत्त्वपूर्ण विचारों को नहीं सुना जाता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि इसके कारण अंतर-दलीय लोकतंत्र पर प्रभाव पड़ता है और दल से जुड़े सदस्यों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाती है।

जनता का, जनता के लिये और जनता द्वारा शासन ही लोकतंत्र है। लोकतंत्र में जनता ही सत्ताधारी होती है, उसकी अनुमति से शासन होता है, उसकी प्रगति ही शासन का एकमात्र लक्ष्य माना जाता है। परंतु यह कानून जनता का नहीं बल्कि दलों के शासन की व्यवस्था अर्थात् 'पार्टी राज' को बढ़ावा देता है।

कई विशेषज्ञ यह भी तर्क देते हैं कि दुनिया के कई परिपक्व लोकतंत्रों में दल-बदल विरोधी कानून जैसी कोई व्यवस्था नहीं है। उदाहरण के लिये इंग्लैण्ड, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि देशों में यदि जनप्रतिनिधि अपने दलों के विपरीत मत रखते हैं या पार्टी लाइन से अलग जाकर वोट करते हैं, तो भी वे उसी पार्टी में बने रहते हैं।

विभिन्न समितियाँ

- दिनेश गोस्वामी समिति
  - वर्ष 1990 में चुनावी सुधारों को लेकर गठित दिनेश गोस्वामी समिति ने कहा था कि दल-बदल कानून के तहत प्रतिनिधियों को अयोग्य ठहराने का निर्णय चुनाव आयोग की सलाह पर राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा लिया जाना चाहिये।
  - संबंधित सदन के मनोनीत सदस्यों को उस स्थिति में अयोग्य ठहराया जाना चाहिये यदि वे किसी भी समय किसी भी राजनीतिक दल में शामिल होते हैं।
- विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट:
  - वर्ष 1999 में विधि आयोग ने अपनी 170वीं रिपोर्ट में कहा था कि चुनाव से पूर्व दो या दो से अधिक पार्टियाँ यदि गठबंधन कर चुनाव लड़ती हैं तो दल-बदल विरोधी प्रावधानों में उस गठबंधन को ही एक पार्टी के तौर पर माना जाए।
  - राजनीतिक दलों को व्हिप (Whip) केवल तभी जारी करनी चाहिये, जब सरकार की स्थिरता पर खतरा हो। जैसे-
    - दल के पक्ष में वोट न देने या किसी भी पक्ष को वोट न देने की स्थिति में अयोग्य घोषित करने का आदेश।
- चुनाव आयोग का मत:
  - इस संबंध में चुनाव आयोग का मानना है कि उसकी स्वयं की भूमिका व्यापक होनी चाहिये।
  - अत: दसवीं अनुसूची के तहत आयोग के बाध्यकारी सलाह पर राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा निर्णय लेने की व्यवस्था की जानी चाहिये।

किहोतो होलोहन बनाम ज़ाचिल्हू (Kihoto Hollohan vs Zachillhu)

वर्ष 1993 के किहोतो होलोहन बनाम ज़ाचिल्हू वाद में उच्चतम न्यायालय ने फैसला देते हुए कहा था कि विधानसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम नहीं होगा। विधानसभा अध्यक्ष का न्यायिक पुनरावलोकन किया जा सकता है। न्यायालय ने माना कि दसवीं अनुसूची के प्रावधान संसद और राज्य विधानसभाओं में निर्वाचित सदस्यों के लोकतांत्रिक अधिकारों का हनन नहीं करते हैं। साथ ही ये संविधान के अनुच्छेद 105 और 194 के तहत किसी तरह से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लंघन भी नहीं करते।

आगे की राह

- दल-बदल विरोधी कानून को भारत की नैतिक राजनीति में एक ऐतिहासिक कदम के रूप में देखा जाता है। इसी कानून ने देश में 'आया राम, गया राम' की राजनीति को समाप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हालाँकि विगत कुछ वर्षों से देश की राजनीति में इस कानून के अस्तित्व को कई बार चुनौती दी जा चुकी है।
- वर्तमान में स्थिति यह है कि राजनीतिक दल स्वयं किसी महत्त्वपूर्ण निर्णय पर दल के अंदर लोकतांत्रिक तरीके से चर्चा नहीं कर रहे हैं और दल से संबंधित विभिन्न महत्त्वपूर्ण निर्णय सिर्फ शीर्ष के कुछ ही लोगों द्वारा लिये जा रहे हैं।
- आवश्यक है कि विभिन्न समितियों द्वारा दी गई सिफारिशों पर गंभीरता से विचार किया जाए और यदि आवश्यक हो तो उनमें सुधार कर उन्हें लागू किया जाए।
- दल-बदल विरोधी कानून में संशोधन कर उसके उल्लंघन पर अयोग्यता की अवधि को 6 साल या उससे अधिक किया जाना चाहिये, ताकि कानून को लेकर नेताओं के मन में डर बना रहे।
- दल-बदल विरोधी कानून संसदीय प्रणाली में अनुशासन और सुशासन सुनिश्चित करने में अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है, लेकिन इसे परिष्कृत किये जाने की ज़रूरत है, ताकि दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र सबसे बेहतर लोकतंत्र भी साबित हो सके।

जनप्रतिनिधि और आचार संहिता

संदर्भ

वर्ष 2018 में अपने कार्यकाल के एक वर्ष पूरा होने के अवसर पर उपराष्ट्रपति एम. वेंकैया नायडु ने संसदीय संस्थानों के प्रति नागरिकों के विश्वास को बनाए रखने और कार्यपालिक/विधायिका के कामकाज को सुचारु रूप से चलाने के लिये नीति निर्माताओं से सांसदों एवं विधायकों हेतु एक आचार संहिता के निर्माण का आग्रह किया था। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट में भी नैतिकता और राजनीति पर चर्चा करते

हुए स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि स्वतंत्रता संग्राम का अटूट हिस्सा रहे नैतिक आचरण के ऊँचे मापदंड भारतीय राजनीति में समय के साथ कमज़ोर होते जा रहे हैं। ऐसे में यह प्रश्न अनिवार्य है कि क्या हमें नैतिक आचरण के ऊँचे मापदंडों की विरासत को बरकरार रखने के लिये नए नियमों की आवश्यकता है?

आचार संहिता का अर्थ

- सामान्य शब्दों में आचार संहिता नियमों का एक समूह है, जो किसी प्राधिकरण के व्यवहार को विनियमित और नियंत्रित करता है तथा जिसका पालन करना अनिवार्य होता है।
- नीति संहिता व आचार संहिता को लेकर प्राय: भ्रम की स्थिति रहती है। अक्सर लोग आचार संहिता और नीति संहिता को एक ही मानकर एक-दूसरे के पर्याय के रूप में इनका प्रयोग करते हैं। हालाँकि दोनों के मध्य अंतर होता है और जेरेमी बेंथम का यह कथन इसी अंतर को भलीभांति स्पष्ट करता है:
    - "नीति संहिता में आमतौर पर सामान्य मूल्य होते हैं, जबकि आचार संहिता उन सिद्धांतों को बताती है जो मूल्यों से प्राप्त होते हैं। मूल्य सामान्यत: नैतिक उत्तरदायित्व होते हैं, जबकि सिद्धांत वे अपेक्षित नैतिक शर्तें या व्यवहार होते हैं जो मूल्यों का अनुसरण करते हैं।"
- अत: सैद्धांतिक तौर पर यह कहा जा सकता है कि नीति संहिता मूल्य को संदर्भित करती है और मूल्य साध्य है तो आचरण संहिता उसे प्राप्त करने का साधन।

जनप्रतिनिधियों के लिये आचार संहिता की पृष्ठभूमि

- भारत में उच्च संवैधानिक पदों पर आसीन लोगों और जनप्रतिनिधियों के लिये आचार संहिता की आवश्यकता पर चर्चा का एक लंबा इतिहास है। इसकी शुरुआत वर्ष 1964 में 'मंत्रियों के लिये आचार संहिता' को अपनाए जाने के साथ ही हो गई थी।
    - विदित हो कि इस संहिता में केंद्रीय मंत्रियों और राज्य मंत्रियों के आचरण से संबंधित विभिन्न प्रावधान किये गए हैं, जिसमें मंत्रियों द्वारा 'क्या किया जाना चाहिये' तथा 'क्या नहीं किया जाना चाहिये' जैसे मार्गदर्शक सिद्धांत शामिल हैं।
- वर्ष 1999 में मुख्य न्यायाधीशों के एक सम्मेलन में सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों हेतु एक आचार संहिता अपनाने का संकल्प लिया गया था।
    - विदित हो कि 15-सूत्रीय इस संकल्प में सिफारिश की गई थी कि सेवारत न्यायाधीशों को आधिकारिक और व्यक्तिगत जीवन के मध्य अलगाव बनाए रखना चाहिये।
- सांसदों के मामले में आचार संहिता के निर्माण का कार्य दोनों सदनों (राज्यसभा और लोकसभा) में नैतिकता पर संसदीय स्थायी समितियों के गठन के साथ शुरू हुआ था।
    - राज्यसभा में इस समिति का उद्घाटन समिति के अध्यक्ष के. आर. नारायणन द्वारा वर्ष 1997 में किया गया था।

जनप्रतिनिधियों के लिये आचार संहिता की आवश्यकता क्यों है?

- भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और यहाँ चुनावों को लोकतंत्र के पर्व के रूप में देखा जाता है, किंतु भारत के इसी लोकतांत्रिक पर्व का एक अन्य पक्ष भी है। भारत में चुनावों को अक्सर निजी हमलों तथा अपमानजनक और नफरत फैलाने वाले भाषणों के लिये याद किया जाता है। सामान्यत: इन अपमानजनक और नफरत फैलाने वाले भाषणों के कारण ही देश में सांप्रदायिकता और अराजकता का माहौल पैदा होता है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिये जनप्रतिनिधियों के आचार को नियंत्रित करना आवश्यक हो जाता है।
- कई जनप्रतिनिधि अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन करने के प्रयास में अक्सर अपने निजी और सार्वजानिक जीवन के मध्य की रेखा को मिटा देते हैं और चुनाव जीतने के लिये किसी भी हद तक चले जाते हैं। इसके अलावा कुछ राजनेता मतदाताओं को प्रतिकूल परिणाम भुगतने की धमकियाँ भी देते हैं।
- देश के सदन की कार्य क्षमता में भी काफी कमी देखने को मिली है। आँकड़ों के मुताबिक वर्ष 1952 से वर्ष 1967 तक तीनों लोकसभाओं ने औसतन 600 दिनों या 3,700 घंटे तक कार्य किया, जबकि 16वीं लोकसभा (जून 2014 से फरवरी 2019) ने मात्र 1,615 घंटे ही कार्य किया। विदित हो कि अंतिम लोकसभा के कार्य घंटे अब तक की सभी पूर्ण लोकसभाओं के औसत कार्य घंटे (2,689 घंटे) से भी 40 प्रतिशत कम है।

नोट :

- संसद में हंगामा करना, अस्वीकार्य टिप्पणी करना और सदन की कार्यवाही को बाधित करने जैसे आरोप मौजूदा समय में लगभग प्रत्येक छोटे-बड़े नेता के नाम के साथ जुड़े हुए हैं।
- जनप्रतिनिधि देश के आम नागरिकों के लिये प्रेरणास्रोत के रूप में भी कार्य करते हैं और यदि वे अपने आचरण में सुधार नहीं करेंगे तो आम जनता को भी इस सुधार के लिये प्रेरित नहीं कर पाएँगे।
- राजनीति का अपराधीकरण भारतीय लोकतंत्र का प्रमुख अंग बन गया है। मौजूदा परिस्थितियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारत में राजनीति अपराधियों को बच निकलने का एक नया रास्ता प्रदान करती है। ऐसी स्थिति पर आचार संहिता के माध्यम से काफी हद तक रोक लगाई जा सकती है।
- अत: राजनीतिक भाषणों और अभिव्यक्तियों में शिष्टाचार सुनिश्चित करने के लिये राजनेताओं हेतु आचार संहिता स्थापित करना अनिवार्य है।

जनप्रतिनिधियों हेतु आचार संहिता के प्रमुख बिंदु

जनप्रतिनिधियों के लिये आचार संहिता के निर्माण हेतु नीति निर्माता निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं:

- जनप्रतिनिधियों और विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन लोगों को अपनी शक्तियों का दुरुपयोग नहीं करना चाहिये।
- उन्हें अपने निजी हितों और सार्वजनिक हितों के मध्य संघर्ष से बचना चाहिये।
- किसी भी सांसद को उन सवालों पर सदन में मतदान करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिये, जिनमें उसका निजी हित निहित है।
  - उदाहरण के लिये सदन में पेट्रोल से संबंधित किसी मुद्दे पर चर्चा की जा रही है तो इस स्थिति में ऐसे सांसदों को मतदान का अधिकार नहीं होना चाहिये जो पेट्रोल के व्यवसाय से जुड़े हुए हैं।
- 100 से अधिक सदस्यों वाली विधायिका में कार्य के न्यूनतम 110 दिन और 100 से कम सदस्यों वाली विधायिका में कार्य के न्यूनतम 90-95 दिन सुनिश्चित किये जाने चाहिये।
- जनप्रतिनिधियों को अपनी आय, संपत्तियों और देनदारियों तथा इनमें परिवर्तन से संबंधित सूचना समय-समय पर साझा करनी चाहिये।
- दुर्व्यवहार करने और नियमों का उल्लंघन करने को लेकर किसी भी सदस्य के सदन से स्वत: निलंबन की व्यवस्था की जानी चाहिये।

अन्य देशों में क्या है व्यवस्था ?

- कनाडा के हाउस ऑफ कॉमन्स ने इस संदर्भ में एक आयुक्त की नियुक्ति की है जिसके पास अन्य सदस्य के अनुरोध पर या सदन के प्रस्ताव पर या स्वयं की पहल पर हितों के टकराव के मामलों की जाँच करने की शक्तियाँ हैं।
- जर्मनी में वर्ष 1972 से बुंडेस्टैग के सदस्यों (Members of the Bundestag) के लिये एक आचार संहिता है।
- अमेरिका के पास भी इस संदर्भ में वर्ष 1968 से एक आचार संहिता मौजूद है।

जनप्रतिनिधियों के लिये आचार संहिता और 2nd ARC

जनप्रतिनिधियों से प्रशासन के नेतृत्त्व तथा मार्गदर्शन की आशा की जाती है। ऐसे में उनके भी आचार और व्यवहार को नियंत्रित किये जाने की आवश्यकता है। दूसरे प्रशासनिक आयोग ने जनप्रतिनिधियों के लिये नैतिक तथा आचरण संहिता पर निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किये हैं-

- उन्हें सामूहिक नेतृत्व का पालन करते हुए नैतिकता के सर्वोच्च मानक बनाए रखने चाहिये तथा अपने विभाग की नीतियों, निर्णयों और कार्यों की जानकारी संसद या विधायिका को देना चाहिये।
- उन्हें हितों के टकराव से बचना चाहिये और यह सुनिश्चित करना चाहिये कि उनके कर्त्तव्यों और निजी हितों के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न न हो। साथ ही उन्हें अपने राजनीतिक, दलीय तथा निजी हितों की पूर्ति के लिये सरकारी संसाधनों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।
- उन्हें सिविल सेवकों की राजनीतिक निष्पक्षता को बनाए रखने में सहयोग करना चाहिये।
- सरकारी निधि का उपयोग उचित ढंग से किया जाना सुनिश्चित करना चाहिये।
- उन्हें अपनी कार्यशैली में वस्तुनिष्ठता, ईमानदारी, निष्पक्षता, समानता आदि का समावेश और अभ्यास करना चाहिये।

आगे की राह

- इस संदर्भ में चुनाव आयोग की भूमिका को और अधिक विस्तृत किये जाने की आवश्यकता है, उनकी भूमिका केवल आचार संहिता का उल्लंघन करने वाले नेताओं के विरुद्ध FIR दर्ज करने तक सीमित नहीं रहनी चाहिये। चुनाव आयोग को ऐसे उम्मीदवारों के राजनीतिक दलों से इनकी उम्मीदवारी रद्द करने की भी सिफारिश करनी चाहिये।
- नियमों का उल्लंघन करने पर राजनीतिक दलों की मान्यता रद्द करने जैसे कठोर कदम देश के लोकतंत्र के पक्ष में हो सकते हैं।
- साथ ही यह भी यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि आचार संहिता विपक्ष की भूमिका पर अंकुश लगाने का साधन न बन जाए।

केंद्र-राज्य विवाद और अनुच्छेद-131

संदर्भ

हाल ही में केरल सरकार ने नागरिकता संशोधन अधिनियम (Citizenship Amendment Act-CCA) की संवैधानिकता को चुनौती देते हुए सर्वोच्च न्यायालय (SC) में एक याचिका दायर की है। इसी के साथ केरल, सर्वोच्च न्यायालय में अधिनियम की संवैधानिकता को चुनौती देने वाला पहला राज्य बन गया है। केरल के अलावा छत्तीसगढ़ सरकार ने भी राष्ट्रीय जाँच एजेंसी अधिनियम (NIA Act) को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी है। दोनों ही राज्यों की सरकारों ने याचिका दायर करने के लिये संविधान के अनुच्छेद-131 को आधार बनाया है। ऐसी स्थिति में भारत के संघीय ढाँचे से संबंधित विभिन्न महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनका विश्लेषण करना आवश्यक है।

क्या कहता है अनुच्छेद-131 ?

- भारतीय संविधान का अनुच्छेद-131 सर्वोच्च न्यायालय को भारत के संघीय ढाँचे की विभिन्न इकाइयों के बीच किसी विवाद पर आरंभिक अधिकारिता की शक्ति प्रदान करता है। ये विवाद निम्नलिखित हैं-
  - केंद्र तथा एक या अधिक राज्यों के बीच।
  - केंद्र और कोई राज्य या राज्यों का एक ओर होना एवं एक या अधिक राज्यों का दूसरी ओर होना।
  - दो या अधिक राज्यों के बीच।
- उपर्युक्त मामलों में सर्वोच्च न्यायालय को आरंभिक अधिकारिता की शक्ति प्राप्त है, जिसका अर्थ है कि देश में कोई अन्य न्यायालय इस प्रकार के विवादों का फैसला नहीं कर सकता है।
- हम कह सकते हैं कि अनुच्छेद 131 के तहत विवाद के रूप में अर्हता प्राप्त करने के लिये किसी विवाद का संघीय ढाँचे की विभिन्न इकाइयों के बीच होना अनिवार्य है।

अनुच्छेद-131 के तहत योग्य मामले

- अनुच्छेद-131 के तहत राज्य सरकार और केंद्र सरकार के मध्य उन विवादों की सुनवाई की जा सकती है जिनमें कानून या तथ्य का प्रश्न निहित हो और जिन पर राज्य या केंद्र के कानूनी अधिकार का अस्तित्त्व निर्भर करता है।
- इस प्रकार राजनीतिक भावना से प्रेरित विवादों के निपटारे के लिये इस अनुच्छेद का प्रयोग नहीं किया जा सकता। वर्ष 2016 में सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के बीच विवाद के मामले पर सुनवाई करने हेतु असहमति जताई थी।
- यदि केंद्र या राज्य के विरुद्ध किसी नागरिक द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष कोई याचिका दायर की जाती है तो उसे इस अनुच्छेद के तहत नहीं लिया जाएगा।

केरल और छत्तीसगढ़ से संबंधित विवाद

- केरल सरकार ने याचिका दायर करते हुए कहा कि केंद्र द्वारा नागरिकता संशोधन अधिनियम (CAA) का अनुपालन करने के लिये अनुच्छेद- 256 के तहत राज्यों को बाध्य किया जाएगा, जो कि 'स्पष्ट रूप से एकपक्षीय, अनुचित, तर्कहीन और मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाला कृत्य' होगा।

नोट :

- केरल सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय से अनुरोध किया है कि CAA को संविधान के अनुच्छेद- 14 (विधि के समक्ष समता), अनुच्छेद- 21 (प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता) और अनुच्छेद- 25 (अंत:करण और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण एवं प्रसार की स्वतंत्रता) के सिद्धांतों का उल्लंघन करने वाला घोषित किया जाए।
  - दरअसल नागरिकता संशोधन अधिनियम के तहत 31 दिसंबर, 2014 को या उससे पहले भारत में आकर रहने वाले अफगानिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान के हिंदुओं, सिखों, बौद्धों, जैनियों, पारसियों और ईसाइयों को अवैध प्रवासी न मानने तथा उन्हें भारतीय नागरिकता प्रदान करने का प्रावधान किया गया है।
  - संशोधित अधिनियम के आलोचकों का कहना है कि यह धर्म के आधार पर भेदभाव करता है और संविधान का उल्लंघन करता है।

संविधान का अनुच्छेद-256

संविधान के अनुच्छेद-256 के अनुसार, प्रत्येक राज्य की कार्यकारी शक्ति को संसद द्वारा बनाए गए कानूनों का अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिये। ज्ञात हो कि यदि कोई राज्य संसद द्वारा बनाए गए कानून को लागू करने में असफल रहता है तो उस पर संविधान का अनुच्छेद-365 लागू किया जा सकेगा, जिसके अनुसार यदि कोई राज्य संघ की कार्यकारी शक्ति का प्रयोग करते हुए दिये गए निर्देशों का अनुपालन करने या उसे प्रभावी करने में असफल रहता है तो राष्ट्रपति के लिये यह मानना विधिपूर्ण होगा कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता। साथ ही उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकेगा।

- केरल के अलावा छत्तीसगढ़ सरकार ने भी राष्ट्रीय जाँच एजेंसी (NIA) अधिनियम, 2008 को असंवैधानिक घोषित करने के लिये अनुच्छेद-131 का प्रयोग करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष याचिका दायर की है।
- छत्तीसगढ़ सरकार के अनुसार, यह अधिनियम 'पुलिस' के विषय में राज्य सरकारों की संप्रभुता का उल्लंघन करता है। ज्ञात हो कि संविधान की सातवीं अनुसूची के अनुसार, 'पुलिस' राज्य सूची का विषय है।

क्या SC अधिनियम को असंवैधानिक घोषित कर सकता है?

- वर्ष 2011 में मध्य प्रदेश राज्य बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि केंद्रीय कानूनों की वैधता को संविधान के अनुच्छेद-32 के तहत तो चुनौती दी जा सकती है, किंतु अनुच्छेद-131 के तहत नहीं।
  - इस मामले में मध्य प्रदेश ने अनुच्छेद-131 के तहत मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम के कुछ प्रावधानों की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने की मांग करते हुए कहा था कि ये प्रावधान संविधान के अनुच्छेद-14 का उल्लंघन करते हैं।
- तीन वर्षों बाद वर्ष 2014 में दो-न्यायाधीशों की पीठ ने झारखंड बनाम बिहार राज्य मामले की सुनवाई करते हुए उक्त फैसले से असहमति व्यक्त की थी, पीठ के अनुसार किसी अधिनियम की संवैधानिकता की जाँच करने के लिये अनुच्छेद-131 का प्रयोग किया जा सकता है।
- झारखंड बनाम बिहार राज्य मामला अब तीन न्यायधीशों की बड़ी पीठ के पास है जिसकी सुनवाई फरवरी 2020 में की जानी है। स्पष्ट है कि इस मामले में बड़ी खंडपीठ के फैसले का प्रभाव केरल राज्य बनाम भारत संघ के मामले पर पड़ सकता है।

अनुच्छेद-131 से संबंधित अन्य विवाद

- आरंभिक/मूल अधिकारिता को लेकर पहला मामला वर्ष 1961 में पश्चिम बंगाल बनाम भारत संघ का था जिसमें पश्चिम बंगाल सरकार ने संसद द्वारा पारित कोयला खदान क्षेत्र (अधिग्रहण एवं विकास) अधिनियम, 1957 को न्यायालय में चुनौती दी थी।
- वर्ष 1978 में कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ मामले में न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती ने निर्णय दिया था कि राज्य को यह दिखाने की आवश्यकता नहीं है कि उसके कानूनी अधिकार का उल्लंघन किया गया है लेकिन इसमें कानूनी सवाल मौजूद होना चाहिये।
- उक्त मामले में यह कहा गया था कि अनुच्छेद-131 द्वारा कानून की संवैधानिकता की जाँच की जा सकती है, किंतु वर्ष 2011 में मध्य प्रदेश राज्य बनाम भारत संघ मामले में न्यायालय का निर्णय इससे इतर था। हालाँकि यह मामला भी न्यायालय के तीन जजों वाली पीठ के समक्ष लंबित है।
- वर्ष 2012 को झारखंड बनाम बिहार राज्य का मामला जिसमें अविभाजित बिहार राज्य में रोज़गार अवधि के लिये झारखंड के कर्मचारियों को पेंशन का भुगतान करने हेतु बिहार के दायित्त्व का मुद्दा शामिल है। यह मामला भी न्यायालय की बड़ी खंडपीठ की सुनवाई के लिये लंबित है।

आगे की राह

- सर्वोच्च न्यायालय को राजनीतिक रूप से प्रेरित याचिकाओं की सुनवाई से बचने का प्रयास करना चाहिये। साथ ही राज्यों के प्रतिनिधियों को किसी भी कानून के संबंध में अपनी चिंताओं को संसद के समक्ष कानून निर्माण के समय रखना चाहिये।
- विदित हो कि संघवाद दो तरफ जाने वाली सड़क की तरह है, इसमें दोनों पक्षों को एक-दूसरे की सीमाओं का सम्मान करना चाहिये जिसे संविधान द्वारा निर्धारित किया गया है।
- जब तक न्यायिक प्रक्रिया के माध्यम से किसी अधिनियम को शून्य अथवा असंवैधानिक घोषित नहीं किया जाता, तब तक राज्य केंद्रीय कानूनों को लागू करने के लिये बाध्य हैं।

भारतीय संविधान और संवैधानिक व्याख्या

संदर्भ

भारतीय संविधान को राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान जागृत राजनीतिक चेतना का परिणाम माना जाता है। राष्ट्रीय आंदोलन या स्वतंत्रता संघर्ष की पृष्ठभूमि में समाज के विभिन्न वर्गों- पुरुष, महिला, श्रमिक, विद्यार्थी, वकील, पूंजीपति के साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रों- पूर्वोत्तर, पश्चिमोत्तर, दक्षिण और उत्तर-मध्य के बीच बेहतर समन्वय देखा गया। इसी समन्वय और विभिन्न वर्गों की महत्त्वाकांक्षाओं की पृष्ठभूमि में भारतीय संविधान का निरूपण किया गया और इसकी प्रस्तावना में राज्य की शक्ति को जनता में निहित बताया गया। भारतीय संविधान में सभी वर्गों के हितों के मद्देनज़र विस्तृत प्रावधानों का समावेश किया गया है, साथ ही सर्वोच्च न्यायालय की विभिन्न व्याख्याओं के माध्यम से भी बदलती परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न अधिकारों को सम्मिलित किया गया। इसके परिणामस्वरूप स्वतंत्रता के 70 वर्षों पश्चात् भी भारतीय संविधान अक्षुण्ण, जीवंत और क्रियाशील बना हुआ है।

भारतीय संविधान- एक जीवंत दस्तावेज़

सामान्य अवधारणा के अनुसार, संविधान नियमों और उपनियमों का एक ऐसा लिखित दस्तावेज़ है, जिसके आधार पर किसी राष्ट्र की सरकार का संचालन किया जाता है। यह देश की राजनीतिक व्यवस्था का बुनियादी ढाँचा निर्धारित करता है। यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक देश का संविधान उस देश के आदर्शों, उद्देश्यों व मूल्यों का संचित प्रतिबिंब होता है। संविधान एक जड़ दस्तावेज़ नहीं होता, बल्कि समय के साथ यह निरंतर विकसित होता रहता है। इस संदर्भ में भारतीय संविधान को एक प्रमुख उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। भारत में संविधान के निर्माण का श्रेय मुख्यत: संविधान सभा को दिया जाता है। संविधान सभा के गठन का विचार सर्वप्रथम वर्ष 1934 में वामपंथी नेता एम.एन. रॉय द्वारा दिया गया था। वर्ष 1946 में 'क्रिप्स मिशन' की असफलता के पश्चात् तीन सदस्यीय कैबिनेट मिशन को भारत भेजा गया। कैबिनेट मिशन द्वारा पारित एक प्रस्ताव के माध्यम से अंतत: भारतीय संविधान के निर्माण के लिये एक बुनियादी ढाँचे का प्रारूप स्वीकार कर लिया गया, जिसे 'संविधान सभा' का नाम दिया गया। भारत का संविधान देश का सर्वोच्च कानून है। यह सरकार के मौलिक राजनीतिक सिद्धांतों, प्रक्रियाओं, प्रथाओं, अधिकारों, शक्तियों और कर्त्तव्यों का निर्धारण करता है। भारतीय संविधान दुनिया का सबसे लंबा लिखित संविधान है जो तत्त्वों और मूल भावना की दृष्टि से अद्वितीय है। मूल रूप से भारतीय संविधान में कुल 395 अनुच्छेद (22 भागों में विभाजित) और 8 अनुसूचियाँ थी, किंतु विभिन्न संशोधनों के परिणामस्वरूप वर्तमान में इसमें कुल 470 अनुच्छेद (25 भागों में विभाजित) और 12 अनुसूचियां हैं। संविधान के तीसरे भाग में 6 मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है। वस्तुत: मौलिक अधिकार का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक लोकतंत्र की भावना को प्रोत्साहन देना है। यह एक प्रकार से कार्यपालिका और विधायिका के मनमाने कानूनों पर निरोधक की तरह कार्य करता है। मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में इन्हें न्यायालय के माध्यम से लागू किया जा सकता है। इसके अलावा भारतीय संविधान की धर्मनिरपेक्षता को भी इसकी एक प्रमुख विशेषता माना जाता है। धर्मनिरपेक्ष होने के कारण भारत में किसी एक धर्म को कोई विशेष मान्यता नहीं दी गई है। विदित हो कि वर्ष 1976 में 42वें संशोधन के माध्यम से संविधान की प्रस्तावना में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द जोड़ा गया था। संविधान से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न संविधान की व्याख्या अथवा अर्थविवेचन से जुड़ा हुआ है। नियमों के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय संविधान का अंतिम व्यख्याकर्त्ता या अर्थविवेचनकर्त्ता है। सर्वोच्च न्यायालय ही संविधान में निहित प्रावधानों तथा उसमें उपयोग की गई शब्दावली के अर्थ एवं निहितार्थ के विषय में अंतिम कथन प्रस्तुत कर सकता है।

नोट :

संविधान के अभाव में

सामाजिक विनियमन की पहली परिकल्पना थॉमस हॉब्स द्वारा सामाजिक समझौते के सिद्धांत में की गई जिसको मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था (जहाँ मनुष्य को दो ही अधिकार प्राप्त है, पहला- अपने जीवन की रक्षा का अधिकार तथा दूसरा- अपने जीवन की रक्षा के लिये कुछ भी करने का अधिकार) की परिस्थितियों से बेहतर सामाजिक प्रगति के क्रम में देखा गया। प्राकृतिक अवस्था की परिस्थितियों में समाज में व्यापक स्तर पर अव्यवस्था व्याप्त थी क्योंकि मनुष्य स्वयं की रक्षा के नाम पर किसी दूसरे के अधिकारों का क्षण भर में ही हनन कर देता था। प्राकृतिक अवस्था की स्थिति शक्ति ही सत्य है पर आधारित थी। अत: इससे लोगों को हमेशा अपने प्राण, अधिकार एवं संपत्ति छिन जाने का संशय रहता था। अत: लोगों ने सामूहिक स्तर पर राजनीतिक और सामाजिक की बेहतर एवं समन्वित व्यवस्था के लिये सामाजिक समझौते के सिद्धांत पर सहमति व्यक्त की जिसमें सभी लोगों द्वारा एक-दूसरे के अधिकारों के सम्मान की व्यवस्था स्थापित की गई।

संवैधानिक व्याख्या और उसका महत्त्व

- 'संवैधानिक व्याख्या' का अभिप्राय संविधान के अर्थ या अनुप्रयोग से संबंधित विवादों को हल करने के प्रयास के रूप में संविधान के विभिन्न प्रावधानों की विवेचना करने से है ताकि प्रावधानों के दायरे को विस्तृत किया जा सके।
- ज़ाहिर है कि संविधान कोई जड़ दस्तावेज़ नहीं होता, बल्कि वह एक गतिशील दस्तावेज़ है, जो समाज की बदलती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये समय के साथ विकसित और बदलता रहता है।
- संसद द्वारा जिन कानूनों को पारित किया जाता है उन्हें आसानी से लागू किया जा सकता है और उतनी ही आसानी से उन्हें निरस्त भी किया जा सकता है जबकि संविधान की प्रकृति कानून से अलग होती है। संविधान का निर्माण भविष्य को ध्यान में रखकर किया जाता है और उसे निरस्त करना अपेक्षाकृत काफी कठिन होता है। इसीलिये मौजूदा परिस्थितियों के अनुसार, इसकी व्याख्या की जानी आवश्यक होती है।

भारत में संवैधानिक व्याख्या का विकास

- पहला चरण: पाठवादी दृष्टिकोण

अपने शुरुआती वर्षों में सर्वोच्च न्यायालय ने एक पाठवादी दृष्टिकोण (Textualist Approach) अपनाया, जो कि संविधान में उल्लिखित शब्दों के शाब्दिक अर्थ पर केंद्रित था। उदाहरण के लिये वर्ष 1950 में ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के भाग III में उल्लेखित मौलिक अधिकारों की व्याख्या की थी, जो कि इस संदर्भ शुरुआती मामला था। इस मामले में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (CPI) के नेता ने दावा किया कि 'निवारक निरोध' कानून अनुच्छेद-19 (स्वतंत्रता का अधिकार), अनुच्छेद-21 (जीवन का अधिकार) और अनुच्छेद-22 (मनमानी गिरफ्तारी और हिरासत के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार) के साथ असंगत था। अपने फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने 'निवारक निरोध' कानून की वैधता को बरकरार रखा और स्पष्ट किया कि उक्त सभी अनुच्छेद (अनुच्छेद-19, 21, 22) पूर्णत: अलग विषय वस्तु से संबंधित हैं और इन्हें एक साथ नहीं पढ़ा जाना चाहिये। संवैधानिक व्याख्या के पहले चरण में संविधान से संबंधित सबसे विवादास्पद प्रश्न यह था कि क्या संविधान विशेष रूप से मौलिक अधिकारों में संशोधन के लिये संसद की शक्ति पर कोई सीमा है। इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने पाठवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए निष्कर्ष दिया कि संसद की शक्तियों पर इस प्रकार की कोई सीमा नहीं है।

- दूसरा चरण: संरचनावादी दृष्टिकोण

दूसरे चरण में सर्वोच्च न्यायालय ने व्याख्या के अन्य तरीकों की खोज शुरू की और धीरे-धीरे संवैधानिक व्याख्या हेतु शाब्दिक अर्थ पर केंद्रित पाठवादी दृष्टिकोण का स्थान संविधान की समग्र संरचना और सुसंगतता पर केंद्रित संरचनावादी दृष्टिकोण (Structuralist Approach) ने ले लिया। वर्ष 1973 के केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि संसद की संविधान में संशोधन करने की शक्ति के तहत संविधान के मूल ढाँचे में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इसके पश्चात् वर्ष 1978 में सर्वोच्च न्यायालय ने मेनका गांधी बनाम भारत सरकार वाद में वर्ष 1950 के ए.के. गोपालन मामले के अपने फैसले को ही खारिज कर दिया। इस मामले में जीवन के अधिकार (अनुच्छेद-21) को और अधिक व्यापक रूप दिया गया तथा स्वच्छ हवा, शीघ्र विचारण और मुफ्त कानूनी सहायता जैसे अधिकारों को भी इसमें शामिल किया गया।

- तीसरा चरण: परिणाम-उन्मुख व्याख्या

संवैधानिक व्याख्या के तीसरे चरण में सर्वोच्च न्यायालय का व्याख्यात्मक दर्शन अधिक परिणाम-उन्मुख हो गया और सर्वोच्च न्यायालय ने वाद से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर गहनता से विचार करने के अपने दायित्व की पूर्णत: उपेक्षा की। इसका एक मुख्य कारण यह था कि सर्वोच्च न्यायालय, जिसकी शुरुआत 8 न्यायाधीशों के साथ हुई थी, में अब 31 न्यायाधीश हो गए थे और लंबित मामलों की बढ़ती संख्या के कारण मात्र 2-3 न्यायाधीशों की पीठ का गठन किया जाने लगा जिससे न्यायाधीशों के मध्य वैचारिक मतभेद उत्पन्न होने लगे।

- चौथा चरण: सामाजिक क्रांति और परिवर्तन

मौजूदा दौर संवैधानिक व्याख्या के विकास का चौथा चरण है, विदित हो कि हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे कई फैसले सुनाए हैं जिनमें व्यक्ति के अधिकारों को मान्यता देकर सामाजिक परिवर्तन के युग की शुरुआत की गई है।

  - बीते वर्ष सर्वोच्च न्यायालय ने 10-50 वर्ष की महिलाओं को केरल के सबरीमाला मंदिर में प्रवेश करने से रोकने वाले प्रतिबंध को हटाते हुए कहा था कि 'भक्ति में लिंगभेद नहीं हो सकता'।
  - वर्ष 2018 में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए समलैंगिकता को अपराध के दायरे से बाहर कर दिया था।

आगे की राह

- भारतीय संविधान आज़ादी के 70 वर्षों बाद भी एक जीवंत दस्तावेज़ की तरह अपना अस्तित्व बनाए हुए है। भारतीय न्यायपालिका और संवैधानिक व्याख्या की प्रक्रिया अनवरत विकास कर रही है।
- आवश्यक है कि संविधान के माध्यम से भारतीय न्यायपालिका की पारदर्शिता और जवाबदेही के मध्य संतुलन और न्यायपालिका की स्वतंत्रता बनाए रखने का प्रयास किया जाए।

राजनीति का अपराधीकरण

संदर्भ

चुनावी सुधारों पर होने वाली तमाम चर्चाओं में राजनीति का अपराधीकरण एक अहम मुद्दा रहता है। राजनीति का अपराधीकरण - 'अपराधियों का चुनाव प्रक्रिया में भाग लेना' - हमारी निर्वाचन व्यवस्था का एक नाज़ुक अंग बन गया है। हाल ही में जारी आँकड़ों के अनुसार, संसद के 46 प्रतिशत सदस्य आपराधिक पृष्ठभूमि से हैं। हालाँकि अधिकतर सांसदों पर 'मानहानि' जैसे अपेक्षाकृत छोटे अपराधों के मामले दर्ज हैं, असल चिंता का विषय यह है कि मौजूदा लोकसभा सदस्यों में सर्वाधिक (29 प्रतिशत) सदस्यों पर गंभीर आपराधिक मामले दर्ज हैं, जबकि पिछली लोकसभा में यह आँकड़ा तुलनात्मक रूप से कम था। राजनीति का अपराधीकरण भारतीय लोकतंत्र का एक स्याह पक्ष है, जिसके मद्देनज़र सर्वोच्च न्यायालय और निर्वाचन आयोग ने कई कदम उठाए हैं, किंतु इस संदर्भ में किये गए सभी नीतिगत प्रयास समस्या को पूर्णत: संबोधित करने में असफल रहे हैं।

राजनीति का अपराधीकरण और भारत

- राजनीति के अपराधीकरण का अर्थ राजनीति में आपराधिक आरोपों का सामना कर रहे लोगों और अपराधियों की बढ़ती भागीदारी से है। सामान्य अर्थों में यह शब्द आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोगों का राजनेता और प्रतिनिधि के रूप में चुने जाने का घोतक है।
- वर्ष 1993 में वोहरा समिति की रिपोर्ट और वर्ष 2002 में संविधान के कामकाज की समीक्षा करने के लिये राष्ट्रीय आयोग (NCRWC) की रिपोर्ट ने पुष्टि की है कि भारतीय राजनीति में गंभीर आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ रही है।
- वर्तमान में ऐसी स्थिति बन गई है कि राजनीतिक दलों के मध्य इस बात की प्रतिस्पर्द्धा है कि किस दल में कितने उम्मीदवार आपराधिक पृष्ठभूमि के हैं, क्योंकि इससे उनके चुनाव जीतने की संभावना बढ़ जाती है।
- पिछले लोकसभा चुनावों के आँकड़ों पर गौर किया जाए तो स्थिति यह है कि आपराधिक प्रवृत्ति वाले सांसदों की संख्या में वृद्धि ही हुई है। उदाहरण के लिये वर्ष 2004 में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले सांसदों की संख्या 128 थी जो वर्ष 2009 में 162 और 2014 में 185 और वर्ष 2019 में बढ़कर 233 हो गई।
  - नेशनल इलेक्शन वॉच और एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म (ADR) द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार, जहाँ एक ओर वर्ष 2009 में गंभीर आपराधिक मामलों वाले सांसदों की संख्या 76 थी, वहीं 2019 में यह बढ़कर 159 हो गई। इस प्रकार 2009-19 के बीच गंभीर आपराधिक पृष्ठभूमि वाले सांसदों की संख्या में कुल 109 प्रतिशत की बढ़ोतरी देखने को मिली।
  - गंभीर आपराधिक मामलों में बलात्कार, हत्या, हत्या का प्रयास, अपहरण, महिलाओं के विरुद्ध अपराध आदि को शामिल किया जाता है।

राजनीति के अपराधीकरण के कारण

- अपराधियों का पैसा और बाहुबल राजनीतिक दलों को वोट हासिल करने में मदद करता है। चूँकि भारत की चुनावी राजनीति अधिकांशत: जाति और धर्म जैसे कारकों पर निर्भर करती है, इसलिये उम्मीदवार आपराधिक आरोपों की स्थिति में भी चुनाव जीत जाते हैं।
- चुनावी राजनीति कमोबेश राजनीतिक दलों को प्राप्त होने वाली फंडिंग पर निर्भर करती है और चूँकि आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों के पास अक्सर धन और संपदा काफी अधिक मात्रा में होता है, इसलिये वे दल के चुनावी अभियान में अधिक-से-अधिक पैसा खर्च करते हैं और उनके राजनीति में प्रवेश करने तथा जीतने की संभावना बढ़ जाती है।
- भारत के राजनीतिक दलों में काफी हद तक अंतर-दलीय लोकतंत्र का अभाव देखा जाता है और उम्मीदवारी पर निर्णय मुख्यत: दल के शीर्ष नेतृत्व द्वारा ही लिया जाता है, जिसके कारण आपराधिक पृष्ठभूमि वाले राजनेता अक्सर दल के स्थानीय कार्यकर्त्ताओं और संगठन द्वारा जाँच से बच जाते हैं।
- भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित देरी ने राजनीति के अपराधीकरण को प्रोत्साहित किया है। अदालतों द्वारा आपराधिक मामले को निपटाने में औसतन 15 वर्ष लगते हैं।
- 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट' (FPTP) निर्वाचन प्रणाली में सभी उम्मीदवारों में से सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाला उम्मीदवार विजयी होता है, चाहे विजयी उम्मीदवार को कितना भी (कम या अधिक) मत क्यों न प्राप्त हुआ हो। इस प्रकार की प्रणाली में अपराधियों के लिये अपने धन और बाहुबल का प्रयोग कर अधिक-से-अधिक मत हासिल करना काफी आसान होता है।
- निर्वाचन आयोग की कार्यप्रणाली में मौजूद खामियाँ भी राजनीति के अपराधीकरण का प्रमुख कारण हैं। चुनाव आयोग ने नामांकन पत्र दाखिल करते समय उम्मीदवारों की संपत्ति का विवरण, अदालतों में लंबित मामलों, सज़ा आदि का खुलासा करने का प्रावधान किया है। किंतु ये कदम अपराध और राजनीति के मध्य साँठगाँठ को तोड़ने की दिशा में अब तक सफल नहीं हो पाए हैं।
- भारत की राजनीति में अपराधीकरण को बढ़ावा देने में नागरिक समाज का भी बराबर का योगदान रहा है। अक्सर आम आदमी अपराधियों के धन और बाहुबल से प्रभावित होकर बिना जाँच किये ही उन्हें वोट दे देता है।
- इसके अलावा भारतीय राजनीति में नैतिकता और मूल्यों के अभाव ने अपराधीकरण की समस्या को और गंभीर बना दिया है। अक्सर राजनीतिक दल अपने निहित स्वार्थों के लिये अपराधीकरण की जाँच करने से कतराती हैं।

राजनीति के अपराधीकरण का प्रभाव

- देश की राजनीति और कानून निर्माण प्रक्रिया में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोगों की उपस्थिति का लोकतंत्र की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- राजनीति के अपराधीकरण के कारण चुनावी प्रक्रिया में काले धन का प्रयोग काफी अधिक बढ़ जाता है।
- राजनीति के अपराधीकरण का देश की न्यायिक प्रक्रिया पर भी प्रभाव देखने को मिलता है और अपराधियों के विरुद्ध जाँच प्रक्रिया धीमी हो जाती है।
- राजनीति में प्रवेश करने वाले अपराधी सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं और नौकरशाही, कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका सहित अन्य संस्थानों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।
- राजनीति का अपराधीकरण समाज में हिंसा की संस्कृति को प्रोत्साहित करता है और भावी जनप्रतिनिधियों के लिये एक गलत उदाहरण प्रस्तुत करता है।

सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका

- वर्ष 2002 में सर्वोच्च न्यायालय ने भारत सरकार बनाम एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म वाद में ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए कहा कि संसद, राज्य विधानसभाओं या नगर निगम के लिये चुनाव लड़ने वाले प्रत्येक उम्मीदवार को अपनी आपराधिक, वित्तीय और शैक्षिक पृष्ठभूमि की घोषणा करनी होगी।
- वर्ष 2005 में रमेश दलाल बनाम भारत सरकार वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि एक संसद सदस्य (सांसद) या राज्य विधानमंडल के सदस्य (विधायक) को दोषी ठहराए जाने पर चुनाव लड़ने से अयोग्य ठहराया जाएगा और उसे अदालत द्वारा 2 वर्ष से कम कारावास की सज़ा नहीं दी जाएगी।

नोट :

- वर्ष 2013 में लिली थॉमस बनाम भारत सरकार वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8(4) असंवैधानिक है, जो दोषी ठहराए गए सांसदों और विधायकों को तब तक पद पर बने रहने की अनुमति देती है, जब तक कि ऐसी सज़ा के विरुद्ध की गई अपील का निपटारा नहीं हो जाता।

क्या कहता है जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम ?

- जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8 दोषी राजनेताओं को चुनाव लड़ने से रोकती है। लेकिन ऐसे नेता जिन पर केवल मुकदमा चल रहा है, वे चुनाव लड़ने के लिये स्वतंत्र हैं। इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि उन पर लगा आरोप कितना गंभीर है।
- इस अधिनियम की धारा 8(1) और 8(2) के अंतर्गत प्रावधान है कि यदि कोई विधायिका सदस्य (सांसद अथवा विधायक) हत्या, बलात्कार, अस्पृश्यता, विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम के उल्लंघन; धर्म, भाषा या क्षेत्र के आधार पर शत्रुता पैदा करना, भारतीय संविधान का अपमान करना, प्रतिबंधित वस्तुओं का आयात या निर्यात करना, आतंकवादी गतिविधियों में शामिल होना जैसे अपराधों में लिप्त होता है, तो उसे इस धारा के अंतर्गत अयोग्य माना जाएगा एवं 6 वर्ष की अवधि के लिये अयोग्य घोषित कर दिया जाएगा।
- वहीं, इस अधिनियम की धारा 8(3) में प्रावधान है कि उपर्युक्त अपराधों के अलावा किसी भी अन्य अपराध के लिये दोषी ठहराए जाने वाले किसी भी विधायिका सदस्य को यदि दो वर्ष से अधिक के कारावास की सज़ा सुनाई जाती है तो उसे दोषी ठहराए जाने की तिथि से आयोग्य माना जाएगा। ऐसे व्यक्ति को सज़ा पूरी किये जाने की तिथि से 6 वर्ष तक चुनाव लड़ने के लिये अयोग्य माना जाएगा।
- वर्ष 2013 में पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़ बनाम भारत सरकार मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि जनता को मतदान के लिये नोटा (none of the above-NOTA) का भी विकल्प उपलब्ध कराया जाए।
  - इस आदेश के पश्चात् भारत नकारात्मक मतदान का विकल्प उपलब्ध कराने वाला विश्व का 14वाँ देश बन गया था।
- वर्ष 2014 में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्रियों से ऐसे व्यक्तियों को अपने मंत्रिमंडल में शामिल न करने की सिफारिश की जिनके विरुद्ध गंभीर अपराध के आरोप लगे हैं।
- वर्ष 2017 में सर्वोच्च न्यायालय ने जन-प्रतिनिधियों के खिलाफ मामलों के त्वरित निस्तारण हेतु विशेष अदालतों के गठन का आदेश दिया था। विशेष न्यायालय एक ऐसी अदालत है जो कानून के किसी विशेष क्षेत्र से संबंधित होती है।

आगे की राह

- आवश्यक है कि राजनीति में अपराधियों की बढ़ती संख्या पर रोक लगाने के लिये कानूनी ढाँचे को मज़बूत किया जाए।
- राजनीतिक दलों को अपना नैतिक दायित्व निभाते हुए गंभीर अपराध में दोषी ठहराए गए लोगों को दल में शामिल करने और उन्हें चुनाव लड़वाने से बचना चाहिये।
- इसके अलावा आम जनता के मध्य जागरूकता फैलाए जाने की भी आवश्यकता है ताकि जनता आपराधिक पृष्ठभूमि वाले प्रत्याशियों का चुनाव ही न करें।

आर्थिक घटनाक्रम

सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण

संदर्भ

अर्थव्यवस्था उत्पादन, वितरण एवं खपत की एक सामाजिक व्यवस्था है। यह किसी देश या क्षेत्र विशेष में अर्थशास्त्र का गतिशील प्रतिबिंब है। इस शब्द का सबसे प्राचीन उल्लेख कौटिल्य द्वारा लिखित ग्रंथ अर्थशास्त्र में मिलता है। अर्थव्यवस्था दो शब्दों से मिलकर बना है यहाँ अर्थ का तात्पर्य है- मुद्रा अर्थात् धन और व्यवस्था का तात्पर्य है- एक स्थापित कार्यप्रणाली। अर्थव्यवस्था में कार्यप्रणाली के कई स्वरुप हैं और इन्हीं स्वरूपों के आधार पर अर्थव्यवस्था का आयोजन एवं नियोजन प्रतिस्थापित होता है। मुख्यत: अर्थव्यवस्था तीन प्रकार की होती है- समाजवादी, पूंजीवादी और मिश्रित। समाजवादी अर्थव्यवस्था में राज्य का अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप होता है, इसके अतिरिक्त मिश्रित अर्थव्यवस्था में राज्य का हस्तक्षेप सीमित तथा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में राज्य का अर्थव्यवस्था में अत्यल्प हस्तक्षेप होता है। अर्थव्यवस्था के स्वरुप के आधार पर ही नियोजन का स्वरुप निर्धारित होता है। भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्यत: मिश्रित प्रकृति की है लेकिन हिंदू वृद्धि दर की सीमित सफलता और भूमंडलीकरण के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था का वर्ष 1991 के बाद से निजीकरण किया जा रहा है। वर्तमान में सार्वजनिक उपक्रमों के घाटे की प्रवृत्ति के कारण इनका निजीकरण किया जाना एक विमर्श का विषय बना हुआ है।

सार्वजनिक क्षेत्र की वर्तमान स्थिति:

वर्तमान में कुछ बड़े सार्वजनिक उपक्रमों जैसे- भारत संचार निगम लिमिटेड, महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड और एयर इंडिया में घाटे की प्रवृत्ति देखी जा रही है, इन उपक्रमों का घाटा इनके राजस्व प्राप्ति से अधिक है। अर्थशास्त्रियों के पास ऐसे उपक्रमों के लिये एक शब्द है - मूल्य आहरण वाले उपक्रम (Value Subtracting Enterprises)। इनका पुनर्गठन और यहाँ तक कि धन और अन्य संसाधनों के प्रयोग के बावजूद सकारात्मक परिणाम नहीं उत्पन्न नहीं हो रहे हैं। सरकार को दिल्ली डिस्कॉम निजीकरण के मामले की भाँति खरीदार को भुगतान करना पड़ सकता है। विश्व बैंक के सलाहकारों ने दिल्ली डिस्कॉम के निजीकरण पर कहा था: "निजीकरण का सहारा घाटे से निपटने के बजाय इनका भौतिक प्रदर्शन सुधारने के लिये किया जाना चाहिये।"

निजीकरण के उद्देश्य:

सामान्यत: यह माना जाता है कि "व्यापार राज्य का व्यवसाय नहीं है"। इसलिये व्यापार/अर्थव्यवस्था में सरकार का अत्यंत सीमित हस्तक्षेप होना चाहिये। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का संचालन बाज़ार कारकों के माध्यम से होता है। भूमंडलीकरण के पश्चात् इस प्रकार की अवधारणा का और तेज़ी से विकास हो रहा है।

इसके अतिरिक्त निजीकरण के कुछ अन्य प्रमुख उद्देश्य हैं-

- वर्तमान में यह आवश्यक हो गया है कि सरकार स्वयं को "गैर सामरिक उद्यमों" के नियंत्रण, प्रबंधन और संचालन के बजाय शासन की दक्षता पर अपना अधिक ध्यान केंद्रित करे।
- गैर-महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में लगी सार्वजनिक संसाधनों की बड़ी धनराशि को समाज की प्राथमिकता में सर्वोपरि क्षेत्रों में लगाना चाहिये। जैसे- सार्वजनिक स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, प्राथमिक शिक्षा तथा सामाजिक और आवश्यक आधारभूत संरचना।
- अव्यवहार्य और गैर-महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को संपोषित किये जाने वाले दुर्लभ सार्वजनिक संसाधनों के उत्तरोत्तर बाह्य प्रवाह (Further out flow) को रोककर सार्वजनिक ऋण के बोझ को कम किया जाना चाहिये।
- वाणिज्यिक जोखिम जिस सार्वजनिक क्षेत्र में करदाताओं का धन लगा हुआ है, को ऐसे निजी क्षेत्र में हस्तांतरित करना जिसके संबंध में निजी क्षेत्र आगे आने के लिये उत्सुक और योग्य हैं। वस्तुत: सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में लगा धन जनसाधारण का होता है। इसलिये कॉर्पोरेट क्षेत्र में लगाए जा रहे अत्यधिक वित्त की मात्रा पर विचार किया जाना अतिआवश्यक है।
- वस्तुत: सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में बढ़ती गैर-निष्पादन परिसंपत्ति (NPA) की मात्रा, दबावग्रस्त परिसंपत्तियों, बढ़ते भ्रष्टाचार तथा बेहतर प्रबंधन एवं संचालन क्षमता की समस्या आदि की वज़ह से सरकार से बैंकों के स्वामित्व में अपनी हिस्सेदारी बेचने की बात की जा रही है।

निजीकरण से तात्पर्य:

वर्तमान लोकतंत्र में निजीकरण अत्यंत बहुचर्चित विषय है। निजीकरण का अर्थ अनेक प्रकार से व्यक्त किया जाता है। संकुचित दृष्टि से निजीकरण का अभिप्राय सार्वजनिक स्वामित्व के अंतर्गत कार्यरत उद्योगों में निजी स्वामित्व के प्रवेश से लगाया जाता है। विस्तृत दृष्टि से निजी स्वामित्व के अतिरिक्त (अर्थात् स्वामित्व के परिवर्तन किये बिना भी) सार्वजनिक उद्योगों में निजी प्रबंध एवं नियंत्रण के प्रवेश से लगाया जाता है, निजीकरण की उपुर्यक्त दोनों विचारधाराओं का अध्ययन करने के पश्चात् यही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि निजीकरण को विस्तृत रूप से ही देखा जाना चाहिये।

यह भी संभव है कि सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र को संपत्ति के अधिकारों का हस्तांतरण बिना विक्रय के ही हो जाए। तकनीकी दृष्टि से इसे अधिनियम (Deregulation) कहा जा सकता है। जिसका आशय यह है कि जो क्षेत्र अब तक सार्वजनिक क्षेत्र के रूप में आरक्षित थे उनमें अब निजी क्षेत्र के प्रवेश की अनुमति दे दी जाएगी। अन्य स्पष्ट शब्दों में निजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत एक नवीन औद्योगिक संस्कृति का विकास होता है यानि सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र की तरफ कदम बढ़ाया जाना।

आर्थिक सुधारों के संदर्भ में निजीकरण का अर्थ है सार्वजनिक क्षेत्र के लिये सुरक्षित उद्योगों में से अधिक-से-अधिक उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए खोलना। इसके अंतर्गत वर्तमान सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को पूरी तरह या उनके एक हिस्से को निजी क्षेत्र को बेच दिया जाता है।

निजीकरण के लाभ:

"व्यापार राज्य का व्यवसाय नहीं है" इस अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में निजीकरण से कार्य निष्पादन में बेहतरीन संभावना होती है।

- निजीकृत कंपनियों में बाज़ार अनुशासन के परिणामस्वरूप वे और अधिक दक्ष बनने के लिये बाध्य होंगे और अपने ही वित्तीय एवं आर्थिक कार्यबल के निष्पादन पर अधिक ध्यान केंद्रित कर सकेंगे। वे बाज़ार को प्रभावित करने वाले कारकों का अधिक सक्रियता से मुकाबला कर सकेंगे तथा अपनी वाणिज्यिक आवश्यकताओं की पूर्ति अधिक व्यावसायिक तरीके से कर सकेंगे। निजीकरण से सरकारी क्षेत्र के उद्यमों की सरकारी नियंत्रण भी सीमित होगा और इससे निजीकृत कंपनियों को अपेक्षित निगमित शासन की प्राप्ति हो सकेगी।
- निजीकरण के परिणामस्वरूप, निजीकृत कंपनियों के शेयरों की पेशकश छोटे निवेशकों और कर्मचारियों को किये जाने से शक्ति और प्रबंधन को विकेंद्रित किया जा सकेगा।
- निजीकरण का पूंजी बाज़ार पर लाभकारी प्रभाव होगा। निवेशकों को बाहर निकलने के सरल विकल्प मिलेंगे, मूल्यांकन और कीमत निर्धारण के लिये अधिक विशुद्ध नियम स्थापित करने में सहायता मिलेगी और निजीकृत कंपनियों को अपनी परियोजनाओं अथवा उनके विस्तार के लिये निधियाँ जुटाने में सहायता मिलेगी।
- पूर्व के सार्वजनिक क्षेत्रों का उपर्युक्त निजी निवेशकों के लिये खोल देने से आर्थिक गतिविधि में वृद्धि होगी और कुल मिलाकर मध्यम से दीर्घावधि तक अर्थव्यवस्था, रोज़गार और कर-राजस्व पर लाभकारी प्रभाव पड़ेगा।
- दूरसंचार और पेट्रोलियम जैसे अनेक क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र का एकाधिकार समाप्त हो जाने से अधिक विकल्पों और सस्ते तथा बेहतर गुणवत्ता वाले उत्पादों और सेवाओं के चलते उपभोक्ताओं को राहत मिलेगी।

निजीकरण से संबंधित समस्याएँ:

सार्वजनिक उपक्रमों के अनेक लाभ हैं इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि निजी क्षेत्र की अपेक्षा सार्वजनिक क्षेत्र के अधिक आर्थिक, सामाजिक लाभ हैं और भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में निजीकरण की कई कठिनाइयाँ हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की संकल्पना की गई है, सैद्धांतिक तौर इन विचारों का निजीकरण की प्रक्रिया से मतभेद होता है।

- निजीकरण की प्रक्रिया की सबसे बड़ी कठिनाई यूनियन के माध्यम से श्रमिकों की ओर से होने वाला विरोध है वे बड़े पैमाने पर प्रबंधन और कार्य-संस्कृति में परिवर्तन से भयभीत होते हैं।
- निजीकरण के पश्चात् कंपनियों की विशुद्ध परिसंपत्ति का प्रयोग सार्वजनिक कार्यों और जनसामान्य के लिये नहीं किया जा सकेगा।
- निजीकरण द्वारा बड़े उद्योगों को लाभ पहुँचाने के लिये निगमीकरण प्रोत्साहित हो सकता है जिससे धन संकेंद्रण की संभावना बढ़ जाएगी।
- धन संकेंद्रण और व्यापारिक एकाधिकार की वजह से बाज़ार में स्वस्थ्य प्रतियोगिता का अभाव हो सकता है।
- कार्यकुशलता औद्योगिक क्षेत्र की समस्याओं का एकमात्र उपाय निजीकरण नहीं है। उसके लिये तो समुचित आर्थिक वातावरण और कार्य संस्कृति में आमूल-चूल परिवर्तन होना आवश्यक है। भारत में निजीकरण को अर्थव्यवस्था की वर्तमान सभी समस्याओं को एकमात्र उपाय नहीं माना जा सकता।

- वर्तमान में वैश्विक स्तर पर चल रहे व्यापार युद्ध और संरक्षणवादी नीतियों के कारण सरकार के नियंत्रण के अभाव में भारतीय अर्थव्यवस्था पर इनके कुप्रभावों को सीमित कर पाना अत्यंत चुनौतीपूर्ण कार्य है। निजीकरण के पश्चात् कंपनियों का तेज़ी से अंतर्राष्ट्रीयकरण होगा और इन दुष्प्रभावों का प्रभाव भी भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा।

निष्कर्ष:

वर्तमान में भूमंडलीकरण के प्रभावों के कारण गतिशील अर्थव्यवस्था का स्वरूप और अर्थव्यवस्था में कार्य निष्पादन, कॉर्पोरेट शासन के साथ-साथ NPA जैसी समस्याओं के कारण सरकार द्वारा निजीकरण को प्रोत्साहित किया जाना अपरिहार्य हो गया है। इसलिये सरकार को इस कदम के साथ-साथ सामाजिक और सार्वजनिक हितों पर भी ध्यान देना अतिआवश्यक है जिससे भारतीय संविधान की प्रस्तावना के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु एक सकारात्मक कदम उठाया जा सके।

आर्थिक मंदी: कारण और उपाय

संदर्भ

हाल ही में राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) ने चालू वित्त वर्ष (2019-20) के लिये देश की अर्थव्यवस्था संबंधी आँकड़ों का पहला अग्रिम अनुमान (FAE) जारी किया है। आधिकारिक आँकड़ों के मुताबिक चालू वित्त वर्ष में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) घटकर 5 प्रतिशत पर पहुँच सकता है। ज्ञातव्य है कि पिछले वित्त वर्ष (2018-19) में भारत की GDP वृद्धि दर 6.8 प्रतिशत थी। यदि चालू वित्त वर्ष में GDP की विकास दर 5 प्रतिशत ही रहती है तो यह बीते 11 वर्षों की सबसे न्यूनतम विकास दर होगी। आर्थिक संकेतकों की मौजूदा स्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अनुमानित दर में ज़्यादा फेर-बदल संभव नहीं है। ऐसे में यह प्रश्न भी उठने लगा है कि क्या भारत एक व्यापक मंदी की कगार पर है?

दूसरी तिमाही में भी निराशाजनक थे आँकड़े

- बीते वर्ष नवंबर माह में NSO द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार, चालू वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही (Q2) में देश की GDP वृद्धि दर घटकर 4.5 प्रतिशत पर पहुँच गई थी, जो कि बीती 26 तिमाहियों का सबसे निचला स्तर था।
    - चालू वित्त वर्ष (2019-20) की दूसरी तिमाही में देश की GDP का कुल मूल्य लगभग 35.99 लाख करोड़ रुपए था, जो कि इसी वर्ष की पहली तिमाही (Q1) में 34.43 लाख करोड़ रुपए था।
- दूसरी तिमाही के निजी अंतिम उपभोग व्यय (PFCE) में भी कमी देखी गई है। जहाँ एक ओर पिछले वित्तीय वर्ष (2018-19) की दूसरी तिमाही में PFCE 9.8 प्रतिशत था, वहीं चालू वर्ष की दूसरी तिमाही में गिरकर यह 5.1 प्रतिशत पर जा पहुँचा था।
- दूसरी तिमाही में विनिर्माण क्षेत्र का प्रदर्शन सबसे खराब रहा और वह पिछले दो वर्षों के सबसे निचले स्तर पर आ गया था। आँकड़ों के अनुसार, Q2 में विनिर्माण क्षेत्र ने (-) 1 प्रतिशत की दर से वृद्धि की थी, वहीं पिछले वर्ष (2018-19) की दूसरी तिमाही (Q2) में यह दर 6.9 प्रतिशत थी।

चालू वित्त वर्ष के अनुमानित आँकड़े

- वित्त वर्ष 2019-20 में स्थिर मूल्यों (आधार वर्ष 2011-12) पर GDP 147.79 लाख करोड़ रुपए रहने का अनुमान लगाया गया है, जबकि वित्त वर्ष 2018-19 में यह 140.78 लाख करोड़ रुपए था। इस प्रकार चालू वित्त वर्ष में GDP वृद्धि दर 5 प्रतिशत रहने का अनुमान है।
- वित्त वर्ष 2019-20 में विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि दर 2.0 प्रतिशत रहने का अनुमान लगाया गया है, जबकि यह वित्त वर्ष 2018-19 में 6.9 प्रतिशत थी।
- वित्त वर्ष 2019-20 में निर्माण क्षेत्र की वृद्धि दर 3.2 प्रतिशत अनुमानित की गई है, जबकि यह वित्त वर्ष 2018-19 में 8.7 प्रतिशत थी।
- चालू वित्त वर्ष में 'कृषि, वानिकी एवं मत्स्य पालन' क्षेत्र की वृद्धि दर 2.8 प्रतिशत रहने का अनुमान है, जबकि यह बीते वित्त वर्ष 2.9 प्रतिशत थी।
- चालू वित्त वर्ष के दौरान स्थिर मूल्यों पर प्रति व्यक्ति आय बढ़कर 96,563 रुपए हो जाने का अनुमान लगाया गया है, जबकि वित्त वर्ष 2018-19 में यह आँकड़ा 92,565 रुपए था। इस प्रकार वित्त वर्ष 2019-20 के दौरान प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि दर 4.3 प्रतिशत रह सकती है, जबकि पिछले वित्त वर्ष में यह वृद्धि दर 5.6 प्रतिशत थी।

क्या हैं कारण ?

- भारतीय अर्थव्यवस्था की मौजूदा स्थिति के लिये कुछ चक्रीय कारकों के साथ संरचनात्मक मांग की समस्या को भी ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है।
- आय स्थिर होने के बावजूद निजी उपभोग, जो कि विकास का सबसे बड़ा चालक है, को बीते कुछ वर्षों में कम बचत, आसान ऋण और सातवें वेतन आयोग जैसे कुछ माध्यमों से वित्तपोषित किया जा रहा है, किंतु यह लंबे समय तक कारगर साबित नहीं हो सकता है।
    - वित्त वर्ष 2018-19 में घरेलू बचत दर GDP के 17.2 प्रतिशत तक गिर गई है, जो वित्त वर्ष 2013-14 में 22.5 प्रतिशत थी।
    - हाल ही में सामने आए NBFC संकट से देश का क्रेडिट सिस्टम काफी प्रभावित हुआ है, जिससे उसके ऋण देने की क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव देखने को मिला है।
- देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था बड़े पैमाने पर किसानों की स्थिर आय की समस्या से जूझ रही है। आँकड़ों के मुताबिक, बीते पाँच वर्षों में ग्रामीण मज़दूरी वृद्धि दर औसतन 4.5 प्रतिशत रही है, किंतु मुद्रास्फीति के समायोजन से यह मात्र 0.6 प्रतिशत रह जाती है।
- आर्थिक विकास के प्रमुख चालक यह स्पष्ट संकेत दे रहे हैं कि निकट भविष्य में तेज़ी से विकास करने की गुंजाइश काफी सीमित है।
    - निजी उपभोग में कमी एक संरचनात्मक विषय है, जो कि निम्न घरेलू आय वृद्धि से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है और निम्न घरेलू आय कम रोज़गार सृजन एवं स्थिर आय जैसी बुनियादी समस्याओं से संबंधित है। इनमें से किसी भी समस्या को अल्पकाल में संबोधित करना थोड़ा मुश्किल है।
    - आँकड़ों को देखते हुए निजी निवेश के तेज़ी से बढ़ने की भी कोई संभावना नहीं है। NSO द्वारा जारी Q2 से संबंधित आँकड़ों के अनुसार, निजी निवेश पिछली 29 तिमाहियों के सबसे निचले स्तर पर आ पहुँचा था।
    - इसके अलावा सार्वजनिक निवेश, जो कि पिछले कई वर्षों से आर्थिक वृद्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था, भी तनाव में है।

आयकर कटौती नहीं है उपाय

- अर्थव्यवस्था की मौजूदा स्थिति से निपटने के लिये आयकर में कटौती को एक उपाय के रूप में देखा जा रहा है। हालाँकि कई विश्लेषकों का मानना है कि आयकर में कटौती अर्थव्यवस्था की माली स्थिति को सुधारने के लिये एक अच्छा विकल्प नहीं है।
- इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में आयकरदाताओं की संख्या काफी कम है और जो लोग आयकर देते हैं उन्हें आयकर में मामूली कटौती का कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इस प्रकार यदि आयकर में कटौती को एक उपाय के रूप में अपनाया जाता है तो इसका फायदा काफी सीमित लोगों तक पहुँचेगा।
- आयकर में कटौती के स्थान पर ग्रामीण क्षेत्र के अधिक-से-अधिक वित्तपोषण को एक बेहतर विकल्प के रूप में देखा जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्र में इन्फ्रास्ट्रक्चर और रोज़गार (जैसे- मनरेगा और पीएम-किसान) आदि में निवेश करने से इस क्षेत्र को मंदी के प्रभाव से उभरने में काफी मदद मिलेगी।

आगे की राह

- अर्थव्यवस्था में सुधार के लिये देश के वित्तीय क्षेत्र मुख्यत: NBFC में सुधार किया जाना आवश्यक है। सार्वजनिक क्षेत्रों के स्वास्थ्य में सुधार के काफी प्रयास किये जा रहे हैं, परंतु MSMEs जैसे कुछ विशेष क्षेत्रों के लिये NBFCs से ऋण के प्रवाह की ज़रूरत है।
- गत कुछ वर्षों में किये गए आर्थिक सुधारों ने देश के शीर्ष कुछ लोगों की ही क्षमता निर्माण का कार्य किया है, परंतु आवश्यक है कि आने वाले सुधारों से समाज की अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति को भी लाभ मिल सके।
- इसके अलावा देश में बुनियादी ढाँचे के अंतर को देखते हुए यह आवश्यक है कि बुनियादी ढाँचे के निर्माण में निजी क्षेत्र की भूमिका को और अधिक बढ़ाया जाए।

कोयला खनन का विनियमन

संदर्भ

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता में केंद्रीय मंत्रिमंडल ने खान और खनिज (विकास एवं विनियम) अधिनियम 1957 तथा कोयला खान

(विशेष प्रावधान) अधिनियम, 2015 में संशोधन करने हेतु खनिज कानून (संशोधन) अध्यादेश 2020 को मंज़ूरी दे दी है। सरकार के इस कदम से न केवल देश में व्यापार सुगमता को बढ़ावा मिलेगा, बल्कि विकास के नए रास्ते भी खुलेंगे। हालाँकि कई विश्लेषकों ने सरकार के इस कदम की आलोचना करते हुए कहा है कि इससे कोल इंडिया लिमिटेड (CIL) में कार्यरत लाखों कर्मचारियों पर प्रभाव पड़ेगा और उसकी स्थिति भी भारत संचार निगम लिमिटेड (BSNL) जैसी हो जाएगी।

अध्यादेश के प्रावधान

- इस अध्यादेश के माध्यम से खान और खनिज (विकास एवं विनियम) अधिनियम 1957 तथा कोयला खान (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 2015 में संशोधन किया जाएगा।
    - खान और खनिज (विकास एवं विनियम) अधिनियम 1957 भारत में खनन क्षेत्र को नियंत्रित करता है और खनन कार्यों के लिये खनन लीज़ को प्राप्त करने और जारी करने संबंधी नियमों का निर्धारण करता है।
    - कोयला खान (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 2015 का उद्देश्य कोयला खनन कार्यों में निरंतरता सुनिश्चित करने और कोयला संसाधनों के इष्टतम उपयोग को बढ़ावा देने के लिये प्रतिस्पर्द्धी बोली (Bidding) के आधार पर कोयला खानों का आवंटित करने के लिये सरकार को सशक्त बनाना है।
- अध्यादेश में उल्लेखित संशोधन के अनुसार, खनन क्षेत्र को भारत में पंजीकृत सभी कंपनियों के लिये खोल दिया गया है। इससे पूर्व सरकार केवल आयरन और स्टील तथा पावर कोल वॉशिंग सेक्टर में लगी कंपनियों को ही कोयला एवं लिग्नाइट खनन लाइसेंस की नीलामी करती थी। ध्यातव्य है कि कोयला खनन क्षेत्र को सभी कंपनियों के लिये खोलकर सरकार इस क्षेत्र का लोकतांत्रिकरण करना चाहती है।
    - संशोधन अध्यादेश के माध्यम से इस शर्त को भी समाप्त कर दिया गया है कि बोली लगाने वाली कंपनी को भारत में खनन क्षेत्र का अनुभव होना चाहिये। सरकार के इस कदम से स्पष्ट है कि अब कोयला खनन के लिये बोली लगाने वालों का दायरा काफी व्यापक होगा।
- साथ ही अध्यादेश में कोयला और लिग्नाइट ब्लॉक्स के लिये पूर्वेक्षण लाइसेंस-सह-खनन लीज़ (Prospecting Licence-cum-Mining Lease-PL-cum-ML) प्रदान करने संबंधी प्रावधान भी किये गए हैं। इससे पूर्व कोयला या लिग्नाइट के संबंध में पूर्वेक्षण लाइसेंस-सह-खनन लीज़ (PL-cum-ML) जारी करने संबंधी कोई प्रावधान नहीं था।
- विदित हो कि वर्ष 2018 में सरकार ने निजी संस्थाओं को वाणिज्यिक खनन की अनुमति दी थी, किंतु गैर-कोयला कंपनियाँ नीलामी में भाग नहीं ले सकती थीं।
- बीते वर्ष अगस्त माह में सरकार ने कोयला खनन में स्वचालित मार्ग के तहत 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) की घोषणा भी की थी।

क्यों आवश्यक है यह कदम?

- आँकड़ों के अनुसार, भारत ने बीते वर्ष कोयले के आयात पर लगभग 1,71,000 करोड़ रुपए खर्च किये थे, जिससे 235 मिलियन टन कोयले का आयात किया गया था।
    - विश्लेषकों के अनुसार, वर्ष 2019 में आयातित कुछ कोयले में से लगभग 100 मिलियन टन कोयले को भारत में मौजूद कोयले से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता था , जबकि 135 मिलियन टन कोयले की आपूर्ति भारत के ही घरेलू उत्पादन से की जा सकती थी, परंतु ऐसा नहीं हो सका और इसके कारण सरकार को राजकोषीय स्तर पर नुकसान का सामना करना पड़ा।
- मौजूदा नियमों के अनुसार कोयला खनन में कंपनियों का प्रवेश काफी सीमित है, जिसके कारण खनन क्षेत्र में एकाधिकार की स्थित बन रही है और बिडिंग (Bidding) से सरकार को जो राशि प्राप्त हो सकती है वह भी काफी सीमित हो गई है।
- यदि हमें अपने विकास लक्ष्यों को प्राप्त करना है तो सभी क्षेत्रों का विकास होना आवश्यक है, जिसमें कोयला खनन क्षेत्र भी शामिल है।

इस कदम के लाभ

- कोयला मंत्रालय के अनुसार, सरकार के इस 'ऐतिहासिक' कदम से एक ऊर्जा दक्ष बाज़ार बनाने में सहायता मिलेगी और व्यापार सुगमता में भी बढ़ोतरी होगी।
- सरकार का यह कदम कोयला खनन क्षेत्र को पूरी तरह से खोल देगा और किसी को भी वित्त और विशेषज्ञता के साथ कोयला खदानों के लिये बोली लगाने एवं अपनी पसंद के किसी भी खरीदार को स्वतंत्र रूप से कोयला बेचने के लिये सक्षम बनाएगा।

नोट :

- इससे कोयला बाज़ार में प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि होगी और कोयले का आयात घटाने में सहायता मिलेगी। साथ ही यह अध्यादेश 31 मार्च, 2020 को समाप्त होने जा रही खनन लीज़ की नीलामी प्रक्रिया को मज़बूती प्रदान करेगा।
- कोयला खनन के क्षेत्र में इस कदम से भारत को अपने खनिज भंडार का न केवल दोहन करने में सहायता मिलेगी बल्कि बहुत सी वैश्विक कंपनियाँ अपनी नई प्रौद्योगिकी के साथ भारत में अपना कारोबार स्थापित कर सकेंगी।
- साथ ही इस अध्यादेश से वाणिज्यिक प्रयोग हेतु कोयला खानों की नीलामी के नियम आसान करने में सहायता मिलेगी।
- इससे भारत को वैश्विक खननकर्त्ताओं द्वारा उपयोग किये जाने वाले उन्नत उपकरणों/तकनीक तक पहुँच प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।
- इस कदम के साथ ही सरकार कोयले के वाणिज्यिक खनन में अधिक भागीदारी का लक्ष्य भी निर्धारित कर सकती है। विदित हो कि वित्तीय वर्ष 2023-24 के लिये 1000 मिलियन टन (MT) कोयला उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।
- विश्व के चौथे सबसे बड़े कोयला भंडार के बावजूद भारत ने वर्ष 2019 में 235 मिलियन टन (MT) कोयले का आयात किया था। यह स्पष्ट करता है कि भारत में संसाधन होने के बावजूद भी उसका यथासंभव दोहन नहीं हो पाया है।
- सरकार के इस कदम से कोयला बाज़ार में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ेगी और एक प्रतिस्पर्द्धी बाज़ार सदैव ग्राहक अनुकूल होता है।

कोल इंडिया लिमिटेड पर प्रभाव

- कोयला खनन क्षेत्र को सभी प्रकार की कंपनियों के लिये खोलने से इस क्षेत्र में कोल इंडिया लिमिटेड (CIL) का एकाधिकार समाप्त हो जाएगा।
- हालाँकि कोयला मंत्रालय का कहना है कि CIL के हितों का ध्यान रहा जाएगा और उसे पर्याप्त मात्रा में ब्लॉक आवंटित किये जाएंगे।
- ज्ञात हो कि CIL एक महारत्न PSU है और इसमें बीते कुछ वर्षों में काफी अधिक सार्वजनिक संसाधनों का निवेश किया गया है।
  - कोयला क्षेत्र के राष्ट्रीयकरण के कुछ समय बाद ही 1975 में कोल इंडिया लिमिटेड की स्थापना एक होल्डिंग कंपनी के रूप में हुई थी।
- यह सुनिश्चित करना सरकार की ज़िम्मेदारी है कि इस कदम से BSNL की तरह CIL के अस्तित्व पर भी खतरा न पैदा हो जाए।
  - मौजूदा समय में CIL में लगभग 3 लाख कर्मचारी कार्य कर रहे हैं और यह एक सूचीबद्ध कंपनी है।

निष्कर्ष

कोयला खनन क्षेत्र को लेकर केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा मंज़ूर किये गए हालिया संशोधन भले भी इस क्षेत्र के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देंगे, किंतु कोल इंडिया लिमिटेड जैसे बड़े महारत्न से संबंधी चिंताओं को दरकिनार नहीं किया जा सकता। आवश्यक है कि सरकार इस क्षेत्र में कार्यरत लोगों को विश्वास दिलाए की इस कदम से उनके भविष्य पर कोई खतरा नहीं होगा। साथ ही उक्त कदमों के अलावा भी क्षेत्र के विकास के लिये खनन लीज़ की मंज़ूरी के लिये लगने वाले समय को कम करने और मंज़ूरी की प्रक्रिया को आसान बनाने जैसे कदम भी लिये जाने चाहिये।

मुद्रास्फीति और भारतीय अर्थव्यवस्था

संदर्भ

केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय (CSO) ने हाल ही में दिसंबर 2019 के लिये उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI) पर आधारित मुद्रास्फीति या महँगाई दर के आँकड़े जारी किये हैं। आँकड़ों के मुताबिक इस अवधि में CPI आधारित देश की मुद्रास्फीति दर 7.35 प्रतिशत रही, जो कि दिसंबर (2018) में 2.11 प्रतिशत और नवंबर (2019) में 5.54 प्रतिशत थी। दिसंबर (2019) में देश की मुद्रास्फीति दर बीते 65 महीनों के उच्च स्तर पर पहुँच गई है, इससे पूर्व जुलाई 2014 में मुद्रास्फीति दर में 7.39 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई थी। मंदी के दौर से गुज़र रही भारतीय अर्थव्यवस्था के लिये मुद्रास्फीति संबंधी हालिया आँकड़े किसी भयावह स्थिति से कम नहीं हैं। ऐसे में उक्त आँकड़ों का विश्लेषण कर यह जानना आवश्यक है कि इसका आम जनमानस के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ सकता है।

क्या कहते हैं CSO के हालिया आँकड़े?

- CSO द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार, ग्रामीण क्षेत्रों में CPI आधारित मुद्रास्फीति दर दिसंबर 2019 में 7.26 प्रतिशत रही, जो कि दिसंबर 2018 में 1.50 प्रतिशत थी। इसी प्रकार शहरी क्षेत्रों में CPI आधारित मुद्रास्फीति दर दिसंबर 2019 में 7.46 प्रतिशत आँकी गई, जो कि दिसंबर 2018 में 2.91 प्रतिशत थी।

- साथ ही CSO ने दिसंबर 2019 के लिये उपभोक्ता खाद्य मूल्य सूचकांक (CFPI) पर आधारित मुद्रास्फीति दर के आँकड़े भी जारी किये। इस दौरान ग्रामीण क्षेत्रों के लिये CFPI आधारित मुद्रास्फीति दर 12.96 प्रतिशत रही, जो कि दिसंबर 2018 में (-) 2.99 प्रतिशत थी। इसी प्रकार शहरी क्षेत्रों के लिये CFPI आधारित मुद्रास्फीति दर दिसंबर 2019 में 16.12 प्रतिशत आँकी गई, जो कि दिसंबर 2018 में (-) 1.89 प्रतिशत थी।
  - दिसंबर 2019 में उपभोक्ता खाद्य मूल्य सूचकांक (CFPI) पर आधारित मुद्रास्फीति दर 14.12 प्रतिशत रही, जो कि दिसंबर 2018 में (-) 2.65 प्रतिशत थी।

मुद्रास्फीति

- जब मांग और आपूर्ति में असंतुलन पैदा होता है तो वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें बढ़ जाती हैं। कीमतों में इस वृद्धि को मुद्रास्फीति कहते हैं। भारत अपनी मुद्रास्फीति की गणना दो मूल्य सूचियों के आधार पर करता है- थोक मूल्य सूचकांक (WPI) एवं उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI)।
- गौरतलब है कि अत्यधिक मुद्रास्फीति अर्थव्यवस्था के लिये हानिकारक होती है, जबकि 2- 3 प्रतिशत की मुद्रास्फीति दर अर्थव्यवस्था के लिये अनुकूल मानी जाती है।
- मुद्रास्फीति मुख्यत: दो कारणों से होती है- मांगजनित कारक एवं लागतजनित कारक।
  - यदि मांग के बढ़ने से वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि होती है तो वह मांगजनित मुद्रास्फीति (Demand-Pull Inflation) कहलाती है।
  - इसके विपरीत यदि उत्पादन के कारकों (भूमि, पूंजी, श्रम, कच्चा माल आदि) की लागत में वृद्धि से वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि होती है तो वह लागतजनित मुद्रास्फीति (Cost-Push Inflation) कहलाती है।
- मुद्रास्फीति का प्रभाव
  - विदित है कि निवेशकर्त्ता मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के निवेशकर्त्ता वे होते हैं जो सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करते हैं और दूसरे प्रकार के निवेशकर्त्ता वे होते है जो संयुक्त पूंजी कंपनियों के हिस्से खरीदते हैं। मुद्रास्फीति से निवेशकर्त्ता के पहले वर्ग को नुकसान तथा दूसरे वर्ग को फायदा होगा।
  - मुद्रास्फीति में वृद्धि से निश्चित आय वर्ग पर भी काफी प्रभाव पड़ता है। निश्चित आय वर्ग में वे लोग शामिल हैं जिनकी आय निश्चित होती है जैसे- श्रमिक, अध्यापक, बैंक कर्मचारी आदि। मुद्रास्फीति के कारण वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतें बढ़ती हैं जिसका निश्चित आय वर्ग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
  - जब ऋणदाता किसी को रुपए उधार देता है तो मुद्रास्फीति के कारण उसके रुपए का मूल्य कम हो जाएगा। इस प्रकार ऋणदाता को मुद्रास्फीति से हानि तथा ऋणी को लाभ होता है।
  - मुद्रास्फीति का कृषक वर्ग पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि कृषक वर्ग उत्पादन करता है और मुद्रास्फीति के दौरान उत्पाद की कीमतें बढ़ती हैं। इस प्रकार मुद्रास्फीति के दौरान कृषक वर्ग को लाभ मिलता है।

मुद्रास्फीति में बढ़ोतरी के कारण ?

- आँकड़ों के अनुसार, कोर मुद्रास्फीति (Core Inflation) में दिसंबर में मामूली बढ़ोतरी (3.7 प्रतिशत) देखने को मिली, जबकि नवंबर (2019) में यह 3.5 प्रतिशत थी।
  - कोर मुद्रास्फीति में मामूली बढ़ोतरी के लिये टेलीकॉम सेक्टर, रेलवे और स्टील उद्योग में हुई मूल्य वृद्धि को उत्तरदायी माना जा सकता है।
- कोर मुद्रास्फीति में हुई मामूली बढ़ोतरी यह स्पष्ट करती है कि देश में महँगाई को बढ़ाने में हेडलाइन मुद्रास्फीति के कारकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। आँकड़े भी बताते हैं कि दिसंबर (2019) के दौरान उपभोक्ता खाद्य मूल्य सूचकांक 14.12 प्रतिशत पर पहुँच गया था।
- उपभोक्ता खाद्य मूल्य सूचकांक में बढ़ोतरी के मामले में सब्जियों और दालों (Pulses) की कीमतों ने सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। आँकड़ों के मुताबिक सब्जियों की कीमतों में लगभग 60.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जिसमें प्याज़ की कीमतें काफी अहम थीं, जबकि दालों की कीमतों में 15.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

नोट :

- खाद्य पदार्थों की कीमत में बढ़ोतरी का सबसे मुख्य कारण असमय हुई बारिश को माना जा रहा है। वर्ष 2019 में दक्षिण-पश्चिम मानसून सीज़न (जून-सितंबर) में जुलाई के अंतिम हफ्ते तक काफी कम बारिश हुई। देर से शुरू हुए मानसून के कारण खरीफ फसल की बुआई में भी देरी हुई। इसके पश्चात् सितंबर, अक्तूबर और नवंबर में भारी बारिश हुई, जिससे फसल को नुकसान हुआ। फसल को नुकसान होने से पूर्ति कम हो गई और कीमतें अचानक से बढ़ने लगीं।
- जिस असमय और भारी बारिश ने खरीफ की फसल को नुकसान पहुँचाया था, उसी ने भू-जल स्तर को बढ़ाने और देश के प्रमुख सिंचाई जलाशयों को पुन: भरने में काफी मदद की। यह रबी की फसल के लिये फायदेमंद साबित हो रहा है। इससे खाद्य पदार्थों की आपूर्ति में वृद्धि होगी और कीमतें पुन: कम हो जाएंगी।

हेडलाइन और कोर मुद्रास्फीति में अंतर

सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि हेडलाइन मुद्रास्फीति, मुद्रास्फीति का प्राकृतिक आँकड़ा होता है जो कि उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI) के आधार पर तैयार की जाती है। हेडलाइन मुद्रास्फीति में खाद्य एवं ईंधन की कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ाव को भी शामिल किया जाता है, जबकि कोर मुद्रास्फीति में खाद्य एवं ईंधन की कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ाव को शामिल नहीं किया जाता है। दरअसल, कोर मुद्रास्फीति के आकलन में वैसे मदों पर ध्यान नहीं दिया जाता है जो किसी अर्थव्यवस्था में मांग और उत्पादन के पारंपरिक ढाँचे के बाहर हों, जैसे- पर्यावरणीय समस्याओं के कारण उत्पादन में देखी जाने वाली कमी।

क्या होगा प्रभाव?

- मुद्रास्फीति दर रिज़र्व बैंक (RBI) की 6 प्रतिशत की अपर लिमिट को पार कर गई है। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि यह आने वाले महीनों में और अधिक बढ़ सकती है और यदि ऐसा होता है तो नीति निर्माता के लिये भारतीय अर्थव्यवस्था को मंदी से बाहर निकालना और भी मुश्किल हो जाएगा।
- ऐसे समय में सबसे बड़ी चुनौती RBI के समक्ष आ सकती है। ज्ञात हो कि RBI की मौद्रिक नीति समिति की बैठक अगले महीने होने वाली है और हालिया आँकड़ों के देखते हुए यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि यह RBI की नीतिगत ब्याज दरों में कटौती को रोक देगा।
  - उम्मीद की जा रही थी कि केंद्रीय बजट के पश्चात् केंद्र की राजकोषीय स्थिति पर स्पष्टता आने से RBI की मौद्रिक नीति समिति (MPC) नीतिगत ब्याज दरों में कमी करेगी, किंतु मुद्रास्फीति के हालिया रुझानों को देखते हुए यह अनुमान गलत साबित हो रहा है।
- अगले महीने की पहली ही तारीख को केंद्र सरकार द्वारा बजट प्रस्तुत किया जाएगा। उक्त आँकड़ों का प्रभाव आगामी बजट पर भी देखने को मिल सकता है, क्योंकि सीमित राजकोषीय संसाधनों के साथ अर्थव्यवस्था को पुन: पटरी पर लाना वित्त मंत्रालय के लिये बड़ी चुनौती होगी।
- साथ ही मध्य-पूर्व में फैली अशांति भी तेल की कीमतों में वृद्धि के रूप में भारत की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है।

मुद्रास्फीति जनित मंदी का खतरा

- स्थिर मांग और उच्च बेरोज़गारी के साथ मुद्रास्फीति में निरंतर वृद्धि की स्थिति को अर्थशास्त्र में मुद्रास्फीति जनित मंदी के रूप में परिभाषित किया जाता है। सामान्य शब्दों में इसे महँगाई दर में बढ़ोतरी और आर्थिक वृद्धि दर में गिरावट के रूप में परिभाषित किया जाता है।
- हाल ही में राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) ने चालू वित्त वर्ष (2019-20) के लिये देश की अर्थव्यवस्था संबंधी आँकड़ों का पहला अग्रिम अनुमान (FAE) जारी किया था। इसके अनुसार, चालू वित्त वर्ष में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) घटकर 5 प्रतिशत पर पहुँच सकता है। ज्ञातव्य है कि पिछले वित्त वर्ष (2018-19) में यह 6.8 प्रतिशत था।
- इसके अतिरिक्त बीते वर्ष नवंबर माह में NSO द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार, चालू वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही (Q2) में देश की GDP वृद्धि दर घटकर 4.5 प्रतिशत पर पहुँच गई थी, जो कि बीती 26 तिमाहियों का सबसे निचला स्तर था।
- गौरतलब है कि यदि एक बार भारत ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है तो उसके लिये इससे उबरना काफी चुनौतीपूर्ण होगा।

आगे की राह

- खाद्य मुद्रास्फीति में बढ़ोतरी उन किसानों के लिये एक अच्छी खबर है जो लंबे समय से फसल की कम कीमतों के कारण नुकसान का सामना कर रहे हैं।
- यह संभावना है कि प्याज़, टमाटर और दालों की आपूर्ति में वृद्धि के पश्चात् यह संकट टल जाएगा। न तो सरकार और न ही RBI द्वारा खाद्य मुद्रास्फीति की अनदेखी की जा सकती है क्योंकि यह आम उपभोक्ताओं को नुकसान पहुँचाने के साथ ही ब्याज़ दर में कटौती की संभावना को कम कर रहा है।

नोट :

मेक इन इंडिया': सफल या असफल

संदर्भ

वर्ष 2014 में केंद्र सरकार ने देश में विनिर्माण को प्रोत्साहित करने और विनिर्माण में निवेश के माध्यम से अर्थव्यवस्था को मज़बूत बनाने के उद्देश्य से 'मेक इन इंडिया' पहल की शुरुआत की थी। इसकी शुरुआत हुए आज पाँच वर्ष से भी अधिक समय बीत चुका है और इस दौरान देश का विनिर्माण क्षेत्र एवं अर्थव्यवस्था दोनों काफी परिवर्तित हुए हैं। ये परिवर्तन 'मेक इन इंडिया' पहल की सफलता और असफलता की कहानी बयाँ करते हैं। ऐसे में यह आवश्यक है कि इन परिवर्तनों का अध्ययन कर इस पहल में निहित कमियों को पहचाना जाए और उन्हें सुधरने का प्रयास किया जाए।

'मेक इन इंडिया' पहल

- 'मेक इन इंडिया' पहल की शुरुआत 25 सितंबर, 2014 को देशव्यापी स्तर पर विनिर्माण क्षेत्र के विकास के उद्देश्य से की गई थी।
- दरअसल औद्योगिक क्रांति ने इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की और संपूर्ण विश्व को यह दिखाया कि यदि किसी देश का विनिर्माण क्षेत्र मज़बूत हो तो वह किस प्रकार उच्च आय वाला देश बन सकता है। विदित हो कि चीन इस तथ्य का ज्वलंत उदाहरण है।
- इस पहल के माध्यम से भारत को एक वैश्विक विनिर्माण केंद्र के रूप में स्थापित करने का महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किया गया था।
- इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सरकार ने मुख्यत: 3 उद्देश्य निर्धारित किये थे:
- अर्थव्यवस्था में विनिर्माण क्षेत्र की हिस्सेदारी बढ़ाने के लिये इसकी विकास दर को 12-14 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक बढ़ाना।
- वर्ष 2022 तक अर्थव्यवस्था में विनिर्माण क्षेत्र से संबंधित 100 मिलियन रोज़गारों का सृजन करना।
- यह सुनिश्चित करना कि सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में विनिर्माण क्षेत्र का योगदान वर्ष 2025 (जो कि संशोधन से पूर्व वर्ष 2022 था) तक बढ़कर 25 प्रतिशत हो जाए।
- 'मेक इन इंडिया' पहल में अर्थव्यवस्था के 25 प्रमुख क्षेत्रों जैसे- ऑटोमोबाइल, खनन, इलेक्ट्रॉनिक्स आदि पर ध्यान केंद्रित किया गया है।
- ज्ञात हो कि इस पहल के तहत केंद्र और राज्य सरकारें भारत के विनिर्माण क्षेत्र को मज़बूत करने के लिये दुनिया भर से निवेश आकर्षित करने का प्रयास कर रही हैं।
- निवेशकों पर पड़ने वाले बोझ को कम करने के लिये सरकार काफी प्रयास कर रही है। इन्हीं प्रयासों के तहत व्यावसायिक संस्थाओं के सभी समस्याओं को हल करने के लिये एक समर्पित वेब पोर्टल की व्यवस्था भी की गई है।

'मेक इन इंडिया' का सकारात्मक पक्ष

- 'मेक इन इंडिया' पहल का एक मुख्य उद्देश्य भारत में रोज़गार के अवसरों को बढ़ाना है। इसके तहत देश के युवाओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है। लक्षित क्षेत्रों, अर्थात् दूरसंचार, फार्मास्यूटिकल्स, पर्यटन आदि में निवेश, युवा उद्यमियों को अनिश्चितताओं की चिंता किये बिना अपने अभिनव विचारों के साथ आगे आने के लिये प्रोत्साहित करेगा।
- 'मेक इन इंडिया' पहल में विनिर्माण क्षेत्र के विकास पर काफी ध्यान दिया जा रहा है, जो न केवल व्यापार क्षेत्र को बढ़ावा देगा, बल्कि नए उद्योगों की स्थापना के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को भी बढ़ाएगा।
- विदित हो कि योजना की शुरुआत के कुछ समय बाद ही वर्ष 2015 में भारत ने अमेरिका और चीन को पीछे छोड़ते हुए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) में शीर्ष स्थान प्राप्त कर लिया था।

'मेक इन इंडिया' का नकारात्मक पक्ष

- भारत एक कृषि प्रधान देश है और भारत की अर्थव्यवस्था कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है। विश्लेषकों का मानना है कि इस पहल का सबसे नकारात्मक प्रभाव भारत के कृषि क्षेत्र पर पड़ा है। इस पहल में भारत के कृषि क्षेत्र को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया गया है।
- चूँकि 'मेक इन इंडिया' मुख्य रूप से विनिर्माण उद्योगों पर आधारित है, इसलिये यह विभिन्न कारखानों की स्थापना की मांग करता है। आमतौर पर इस तरह की परियोजनाएँ बड़े पैमाने पर प्राकृतिक संसाधनों जैसे पानी, भूमि आदि का उपभोग करती हैं।
- इस पहल के तहत विदेशी कंपनियों को भारत में उत्पादन करने के लिये प्रेरित किया गया है, जिसके कारण भारत के छोटे उद्यमियों पर असर देखने को मिला है।

नोट :

'मेक इन इंडिया' का मूल्यांकन

चूँकि इस पहल का उद्देश्य विनिर्माण क्षेत्र के तीन प्रमुख कारकों- निवेश, उत्पादन और रोज़गार में वृद्धि करना था। अत: इसका मूल्यांकन भी इन्हीं तीनों के आधार पर किया जा सकता है।

- निवेश

पिछले पाँच वर्षों में अर्थव्यवस्था में निवेश की वृद्धि दर काफी धीमी रही है। यह स्थिति तब और खराब हो जाती है जब हम विनिर्माण क्षेत्र में पूंजी निवेश पर विचार करते हैं। आर्थिक सर्वेक्षण 2018-19 के अनुसार, अर्थव्यवस्था में कुल निवेश को प्रदर्शित करने वाला सकल स्थायी पूंजी निर्माण (GFCF) जो कि वर्ष 2013-14 में GDP का 31.3 प्रतिशत था, वर्ष 2017-18 में घटकर 28.6 प्रतिशत हो गया। महत्त्वपूर्ण यह है कि इस अवधि के दौरान कुल निवेश में सार्वजनिक क्षेत्र की हिस्सेदारी कमोबेश समान ही रही, जबकि निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी 24.2 प्रतिशत से घटकर 21.5 प्रतिशत हो गई। दूसरी ओर इस अवधि में बचत संबंधी आँकड़ों से ज्ञात होता है कि घरेलू बचत दर में गिरावट आई है, जबकि निजी कॉर्पोरेट क्षेत्र की बचत दर में बढ़ोतरी हुई है। इस प्रकार हम एक ऐसी स्थित में हैं, जहाँ निजी क्षेत्र की बचत बढ़ रही है, किंतु निवेश में कमी आ रही है।

- उत्पादन

औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (IIP) विनिर्माण क्षेत्र के उत्पादन में होने वाले परिवर्तन का सबसे बड़ा सूचक है। यदि अप्रैल 2012 से नवंबर 2019 के मध्य औद्योगिक उत्पादन सूचकांक के आँकड़ों पर गौर करें तो ज्ञात होता है कि इस दौरान मात्र 2 ही बार डबल डिजिट ग्रोथ दर्ज की गई, जबकि अधिकांश महीनों में यह या तो 3 प्रतिशत से कम थी या नकारात्मक थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विनिर्माण क्षेत्र में अभी भी उत्पादन वृद्धि नहीं हो पाई है।

- रोज़गार

हाल ही में सेंटर फॉर मॉनीटरिंग इंडियन इकोनॉमी (CMIE) ने बेरोज़गारी दर के संबंध में आँकड़े जारी किये हैं, जिसके मुताबिक सितंबर-दिसंबर 2019 के दौरान भारत की बेरोज़गारी दर बढ़कर 7.5 प्रतिशत हो गई थी। शिक्षित युवाओं के मामले में बेरोज़गारी की दर और भी खराब थी, जो यह दर्शाता है कि वर्ष 2019 युवा स्नातकों के लिये सबसे खराब वर्ष था। ज्ञात हो कि मई-अगस्त 2017 में यह दर 3.8 प्रतिशत थी।

उक्त तीनों कारकों के आधार पर 'मेक इन इंडिया' पहल का मूल्यांकन करने पर ज्ञात होता है कि यह पहल इच्छा के अनुरूप प्रदर्शन नहीं कर पाई है।

कारण

- विश्लेषकों के अनुसार, इस पहल के संतोषजनक प्रदर्शन न कर पाने का मुख्य कारण यह था कि यह विदेशी निवेश पर काफी अधिक निर्भर थी, इसके परिणामस्वरूप एक अंतर्निहित अनिश्चितता पैदा हुई क्योंकि भारत में उत्पादन की योजना किसी और देश में मांग और पूर्ति के आधार पर निर्धारित की जा रही थी।
- भारत की अधिकांश योजनाएँ अकुशल कार्यान्वयन की समस्या का सामना कर रही हैं और 'मेक इन इंडिया' पहल की स्थिति में भी यह एक बड़े कारक के रूप में सामने आया है।
- एक अन्य कारण यह भी है कि इस पहल के तहत विनिर्माण क्षेत्र के लिये काफी महत्त्वाकांक्षी विकास दर निर्धारित की गई थी। विश्लेषकों का मानना है कि 12-14 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर औद्योगिक क्षेत्र की क्षमता से बाहर है। ऐतिहासिक रूप से भारत के विनिर्माण क्षेत्र ने कभी भी इतनी विकास दर प्राप्त नहीं की है।
- वैश्विक अर्थव्यवस्था की अनिश्चितताओं और लगातार बढ़ते व्यापार संरक्षणवाद का इस पहल पर प्रतिकूल प्रभाव देखने को मिला है।

आगे की राह

- 'ईज़ ऑफ डूइंग बिज़नेस इंडेक्स' में भारत की रैंकिंग में काफी सुधार आया है, किंतु इसके बावजूद देश में निवेश नहीं बढ़ रहा है। यह स्पष्ट दर्शाता है कि भारत को विनिर्माण गतिविधियों को बढ़ाने के लिये नीतियों की विंडो ड्रेसिंग (Window Dressing) से कुछ अधिक की ज़रूरत है।
- विशेषज्ञों के अनुसार, सरकार को यह समझना चाहिये कि संसद में मात्र कुछ बिल पारित करने और निवेशकों की बैठक आयोजित करने से औद्योगीकरण को शुरू नहीं किया जा सकता है।
- भारत सरकार को उद्योगों विशेष रूप से विनिर्माण उद्योगों के विकास के लिये अनुकूल वातावरण बनाने हेतु और अधिक प्रयास करने होंगे।

बजट: चुनौती और संभावना

संदर्भ

केंद्र सरकार 1 फरवरी, 2020 को आगामी वित्त वर्ष (2020-21) के लिये केंद्रीय बजट प्रस्तुत करेगी। मंदी के दौर से गुज़र रही भारतीय अर्थव्यवस्था के लिये यह बजट काफी महत्त्वपूर्ण होगा। निरंतर गिरती आर्थिक वृद्धि दर और मुद्रास्फीति संबंधी हालिया आँकड़ों ने बजट निर्माण की प्रक्रिया को काफी जटिल बना दिया है। भारतीय अर्थव्यवस्था को मौजूदा मंदी से उबारना और वर्ष 2024 तक भारत को 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बनाने का लक्ष्य प्राप्त करना बजट निर्माताओं के समक्ष बड़ी चुनौती होगी।

क्या होता है बजट ?

- भारतीय संविधान में शासन प्रणाली की त्रि-स्तरीय व्यवस्था अपनाई गई है। सर्वप्रथम केंद्रीय सरकार फिर राज्य सरकारें और अंत में स्थानीय सरकारें (जैसे- नगर निगम, नगरपालिका और ज़िला परिषद)।
- तद्नुसार उक्त सरकारें अपना-अपना बजट तैयार करती हैं जिसमें अपेक्षित राजस्व और प्रस्तावित व्यय का अनुमान होता है, इन्हें केंद्रीय बजट, राज्य बजट और नगरपालिका बजट कहते हैं।
- वर्ष 2017 से पूर्व सरकार द्वारा अपने अपेक्षित राजस्व और अनुमानित व्यय का विवरण यानी केंद्रीय बजट को फरवरी माह के अंतिम कार्य दिवस पर प्रस्तुत किया जाता था, किंतु वर्ष 2017 में इस प्रथा को बदलते हुए सरकार ने पहली बार 1 फरवरी को बजट प्रस्तुत किया था और तब से प्रत्येक वर्ष 1 फरवरी को ही बजट प्रस्तुत किया जाता है।
- भारतीय संविधान में 'बजट' शब्द का कहीं भी प्रयोग नहीं किया गया है। इस संदर्भ में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 112 में 'वार्षिक वित्तीय विवरण' का प्रयोग किया गया है।
- इस प्रकार कहा जा सकता है कि बजट एक वार्षिक वित्तीय विवरण होता है, जो वित्तीय वर्ष के दौरान अपेक्षित राजस्व और अनुमानित व्यय को दर्शाता है।
- सरकार अपने उद्देश्यों के आलोक में व्यय की योजना बनाती है और फिर प्रस्तावित व्यय को पूरा करने के लिये संसाधन जुटाने की कोशिश करती है। आमतौर पर कर, शुल्क और जुर्माना, राज्यों द्वारा लिये गए ऋण का ब्याज और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के लाभांश केंद्र सरकार के लिये राजस्व प्राप्ति के प्रमुख स्रोत होते हैं।
- बजट मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित होता है:
  - राजस्व बजट

राजस्व बजट में राजस्व प्राप्तियाँ और इस प्राप्ति से किये जाने वाले व्यय शामिल होते हैं। राजस्व प्राप्तियों में कर राजस्व (जैसे- आयकर, उत्पाद शुल्क आदि) और गैर-कर राजस्व (जैसे- ब्याज रसीदें, लाभ आदि) दोनों शामिल होते हैं।

  - पूंजीगत बजट

पूंजीगत बजट में पूंजी प्राप्तियाँ (जैसे- उधार, विनिवेश) और लंबी अवधि के पूंजीगत व्यय (जैसे- संपत्ति, निवेश का सृजन) शामिल होती हैं। पूंजी प्राप्तियाँ सरकार की वे प्राप्तियाँ होती हैं जो या तो देनदारियों (Liabilities) का सृजन करती हैं या वित्तीय परिसंपत्तियों को कम करती हैं, जैसे- बाज़ार उधार, ऋण की वसूली आदि। वहीं पूंजीगत व्यय सरकार का वह व्यय होता है जो या तो संपत्ति का निर्माण करता है या देयता को कम करता है।

केंद्रीय बजट के उद्देश्य

- आर्थिक वृद्धि

केंद्रीय बजट का प्राथमिक उद्देश्य अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को बढ़ावा देना होता है, ताकि आम लोगों के जीवन स्तर में सुधार किया जा सके। ज्ञात हो कि आर्थिक वृद्धि देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में निरंतर वृद्धि को सूचित करती है।

- गरीबी और बेरोज़गारी दर में कमी

रोज़गार के अवसर पैदा करना और गरीबों को अधिक-से-अधिक सामाजिक लाभ प्रदान करके सामूहिक गरीबी और बेरोज़गारी का उन्मूलन करना भी केंद्रीय बजट का एक अन्य उद्देश्य होता है।

- आर्थिक असमानता को कम करना

सरकार केंद्रीय बजट के माध्यम से आर्थिक असमानता को कम करने का प्रयास करती है। इसके लिये कर लगाने और सब्सिडी देने जैसे उपाय अपनाए जा सकते हैं। सरकार निम्न आय वाले लोगों को सब्सिडी और सुविधाएँ प्रदान करती है, जो कि आर्थिक असमानता को कम करने में मदद करता है।

- आर्थिक स्थिरता

सरकार सब्सिडी और व्यय के माध्यम से सामान्य मूल्य स्तर में उतार-चढ़ाव को नियंत्रित कर आर्थिक स्थिरता लाने का प्रयास करती है। उदाहरण के लिये मुद्रास्फीति (कीमतों में निरंतर वृद्धि) की स्थिति में सरकार अपने खर्च को कम कर देती है और करों की दर में वृद्धि कर देती है, वहीं संकुचन या मंदी की स्थिति में करों में कटौती की जाती है और आम लोगों को खर्च हेतु प्रोत्साहित करने के लिये सब्सिडी प्रदान की जाती है।

आगामी बजट से क्या उम्मीदें हैं?

- आयकर स्लैब में परिवर्तन

1 फरवरी को प्रस्तुत होने वाले केंद्रीय बजट से आयकर छूट की सीमा में बढ़ोतरी की उम्मीद है। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार, 2.5 लाख रुपए तक की आय वाले लोगों को आयकर में छूट दी गई है। वहीं 2.5 लाख रुपए से 5 लाख रुपए तक की आय पर 5 प्रतिशत, 5 लाख रुपए से 10 लाख रुपए तक की आय पर 20 प्रतिशत और 10 लाख रुपए या उससे अधिक आय पर 30 प्रतिशत कर देना होता है। संभव है कि आगामी बजट में 2.5 लाख रुपए की सीमा को 5 लाख रुपए कर दिया जाए। यदि ऐसा होता है तो करदाताओं को लाभ मिलेगा और वे अधिक-से-अधिक मांग कर कर सकेंगे, जिससे आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा मिलेगा।

- 80C की सीमा में वृद्धि

बजट में आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 80C के तहत मिलने वाली कटौती की सीमा बढ़ाने पर विचार किया जा सकता है। पिछली बार धारा 80C के तहत कटौती की सीमा को वर्ष 2014 में 1 लाख रुपए से बढ़ाकर 1.5 लाख रुपए किया गया था। विदित हो कि धारा 80C किसी भी व्यक्ति को कुछ निश्चित स्थानों जैसे- जीवन बीमा, लोक भविष्य निधि (PPF) और राष्ट्रीय बचत पत्र आदि में निवेश करने पर कर में एक निश्चित राशि (वर्तमान में 1.5 लाख रुपए) की कटौती की अनुमति देती है। विश्लेषकों के अनुसार इस सीमा को 2.5 लाख रुपए तक बढ़ाया जाना चाहिये।

- उपभोक्ता वस्तुओं और FMCG उत्पादों पर कम GST

मौजूदा समय में देश का FMCG सेक्टर मांग की कमी में समस्या से जूझ रहा है। FMCG सेक्टर को उबारने के लिये सरकार उपभोक्ता वस्तुओं और FMCG उत्पादों पर वस्तु एवं सेवा कर (GST) की दर को कम कर सकती है। यह कदम मांग बढ़ाकर अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने में मदद करेगा।

- ग्रामीणों की आय में वृद्धि

केंद्र सरकार महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना (MNREGS) के माध्यम से ग्रामीणों की आय में वृद्धि करने पर भी विचार कर सकती है। ज्ञात हो कि भारतीय अर्थव्यवस्था की मौजूदा स्थिति के लिये काफी हद तक ग्रामीण मांग में कमी को ज़िम्मेदार माना जा रहा है। अत: यह स्पष्ट है कि ग्रामीण मांग में वृद्धि किये बिना भारतीय अर्थव्यवस्था की मौजूदा स्थिति में सुधार नहीं किया जा सकता। इसके अलावा बाज़ार में इलेक्ट्रिक कारों की बिक्री बढ़ाने के लिये लिथियम आयन (Lithium-ion) बैटरी पर कस्टम ड्यूटी घटाई जा सकती है।

- LTCG दरों में कटौती

दीर्घकालिक पूंजीगत लाभ (LTCG) पर लगने वाले कर की दर में कटौती हो सकती है। यदि ऐसा होता है तो इससे शेयर बाज़ार में दीर्घावधि के निवेशकों को प्रोत्साहन मिलेगा।

चुनौतियाँ

- पूंजी और उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के मामले में भारत का औद्योगिक प्रदर्शन वित्त वर्ष 1991-92 के संकट के बाद शायद सबसे खराब स्थिति में है। हाल के महीनों में औद्योगिक क्षेत्र ने मांग में गिरावट के कारण मौजूदा व्यवसायों के भीतर नई क्षमताओं के निर्माण में निवेश करना लगभग बंद कर दिया है। निगम कर में कटौती से भले ही अल्पकाल में मांग में वृद्धि करने में मदद मिली हो, किंतु दीर्घकालिक स्थिति अभी भी पहले जैसी है।

- भारतीय अर्थव्यवस्था को लेकर मौजूदा समय में सबसे महत्त्वपूर्ण चिंता कृषि क्षेत्र के प्रदर्शन को लेकर है। खराब प्रदर्शन वाले कृषि-क्षेत्र ने ग्रामीण उपभोक्ता मांग को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। बजटीय उपकरणों का प्रयोग करते हुए कृषि क्षेत्र के प्रदर्शन को सुधारना सरकार के लिये बड़ी चुनौती होगी।
- सरकार ने वर्ष 2024 तक भारतीय अर्थव्यवस्था को 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया है। आर्थिक विश्लेषकों का मानना है कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये भारत को 8 प्रतिशत की दर से निरंतर विकास करना होगा, किंतु अर्थव्यवस्था संबंधी आधिकारिक आँकड़े बताते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था की मौजूदा स्थिति अच्छी नहीं है। हाल ही में राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) ने चालू वित्त वर्ष (2019-20) के लिये देश की अर्थव्यवस्था संबंधी आँकड़ों का पहला अग्रिम अनुमान (FAE) जारी किया था, जिनके मुताबिक चालू वित्त वर्ष में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) घटकर 5 प्रतिशत पर पहुँच सकता है।
- विभिन्न रिपोर्ट्स और आँकड़ों से स्पष्ट है कि शिक्षित युवाओं के मध्य ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में बेरोज़गारी का उच्च स्तर नीति निर्माताओं के लिये बड़ी चुनौती के रूप में उभर रहा है। हाल ही में सेंटर फॉर मॉनीटरिंग इंडियन इकोनॉमी (CMIE) ने बेरोज़गारी दर के संबंध में आँकड़े जारी किये हैं, जिसके मुताबिक सितंबर-दिसंबर 2019 के दौरान भारत की बेरोज़गारी दर बढ़कर 7.5 प्रतिशत हो गई थी।
- केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय (CSO) ने हाल ही में दिसंबर 2019 के लिये उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI) पर आधारित मुद्रास्फीति या महँगाई दर के आँकड़े जारी किये थे। आँकड़ों के मुताबिक, इस अवधि में CPI आधारित देश की मुद्रास्फीति दर 7.35 प्रतिशत रही, जो कि दिसंबर (2018) में 2.11 प्रतिशत और नवंबर (2019) में 5.54 प्रतिशत थी। बजट के माध्यम से आम नागरिकों की जेब पर कीमतों के बोझ को कम करना भी एक बड़ी चुनौती होगी।

आगे की राह

- सर्वप्रथम सरकार को कर रियायतों और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को गति देकर आर्थिक मंदी से निकलने के विकल्प के मध्य समन्वय स्थापित करना होगा।
- पीएम-किसान (PM-KISAN) योजना के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनरुद्धार पर विचार किया जा सकता है, किंतु पहले योजना के तहत सभी किसानों को कवर करने के प्रयास किये जाने चाहिये।
    - आँकड़ों के मुताबिक, लगभग 92 प्रतिशत भूमि रिकॉर्ड डिजिटल रूप में हैं, किंतु फिर भी पीएम-किसान योजना कुल पात्र लाभार्थियों में से केवल 50 प्रतिशत को कवर करती है।

आर्थिक स्थिति को सुधारने के साथ-साथ बजट निर्माताओं को वित्तीय प्रणाली में विश्वास की कमी की समस्या से निपटने के प्रयास भी करने चाहिये।

कपास उद्योग और बीटी-कपास

संदर्भ

भारत में कपास उत्पादन का एक लंबा इतिहास रहा है, अंग्रेज़ों के भारत आने से पहले ही देश में कई तरह की कपास की किस्मों का उत्पादन किया जाता था। आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2003-04 में भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा कपास उत्पादक और कपास का सातवाँ सबसे बड़ा निर्यातक था। वर्ष 2002 में जीन संवर्द्धित (Genetically Modified-GM) कीट प्रतिरोधी बीटी कपास हाइब्रिड्स (Bt-Cotton Hybrids) के आगमन से देश का कपास सेक्टर पूरी तरह से परिवर्तित हो गया। मौजूदा समय में बीटी कपास देश के कपास क्षेत्र का लगभग 95 प्रतिशत हिस्सा कवर करता है। अनुमानत: इस वर्ष भारत, चीन को पीछे छोड़ते हुए दुनिया का सबसे बड़ा कपास उत्पादक बन जाएगा। हालाँकि आलोचकों का कहना है कि बीटी कपास हाइब्रिड्स ने किसानों, खासकर संसाधनों की कमी से जूझ रहे किसानों, की आजीविका को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है और कृषि संकट में योगदान दिया है।

भारत में कपास उत्पादन का इतिहास

- भारत में ब्रिटिशों के आगमन से पूर्व कपास की विभिन्न किस्में स्वदेशी रूप से देश के विभिन्न भागों में उगाई जाती थीं, जिनमें से प्रत्येक किस्म स्थानीय मिट्टी, पानी और जलवायु के अनुकूल थी।

नोट :

- अंग्रेज़ों ने भारत में उगाई जाने वाली कपास की किस्मों को निम्न स्तर का मानकर अमेरिका स्थित मिलों की आवश्यकता के अनुरूप वर्ष 1797 में बॉर्बन कपास (Bourbon Cotton) के उत्पादन की शुरुआत की। बॉर्बन कपास ने कपास की उन किस्मों की उपेक्षा की जो कीट प्रतिरोधी और मौसम की अनियमितता से लड़ने में समर्थ थे, परिणामस्वरूप पारंपरिक बीज चयन, कपास की खेती का प्रबंधन और खेती के तरीके प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुए।
- कपास की नई किस्में लाभदायक तो थीं, किंतु मौसम और कीट जैसी समस्याओं से निपटने में सक्षम नहीं थीं। आज़ादी के बाद भी इसका उत्पादन जारी रहा। कीटों की समस्या को दूर करने के लिये काफी अधिक मात्रा में कीटनाशक का इस्तेमाल किया जा रहा था। अंतत: इस समस्या को नियंत्रित करने के लिये सरकार ने वर्ष 2002 में बीटी-कपास की शुरुआत की।

बीटी (BT) क्या है?

- बेसिलस थुरिनजेनेसिस (Bacillus Thuringiensis-BT) एक जीवाणु है जो प्राकृतिक रूप से क्रिस्टल प्रोटीन उत्पन्न करता है। यह प्रोटीन कीटों के लिये हानिकारक होता है।
- इसके नाम पर ही बीटी फसलों का नाम रखा गया है। बीटी फसलें ऐसी फसलें होती हैं जो बेसिलस थुरिनजेनेसिस (BT) नामक जीवाणु के समान ही विषाक्त पदार्थ को उत्पन्न करती हैं ताकि फसल का कीटों से बचाव किया जा सके।

बीटी कपास और भारत का कपास उद्योग

- वर्ष 2002 से 2008 के मध्य बीटी-कपास का उत्पादन करने वाले किसानों पर किये गए एक अध्ययन में निम्नलिखित तथ्य सामने आए थे:
  - बीटी-कपास की उपज में पारंपरिक कपास की तुलना में 24 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसके परिणामस्वरूप मुनाफे में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई।
  - वर्ष 2006-08 के दौरान बीटी कपास को अपनाने वाले किसान परिवारों ने पारंपरिक खेती करने वाले परिवारों की अपेक्षा उपभोग पर 18 प्रतिशत अधिक खर्च किया, जिससे जीवन स्तर में सुधार के संकेत मिलते हैं। विदित है कि कीटों से होने वाले नुकसान को कम करने से किसानों को फायदा हुआ है।
  - बीटी कपास के उपयोग के साथ कीटनाशकों के प्रयोग में भी कमी आई है।
- बीटी कपास की शुरुआत ने कपास उत्पादक राज्यों के उत्पादन में काफी वृद्धि की और जल्द ही बीटी कपास ने कपास की खेती के तहत अधिकांश ज़मीन पर कब्ज़ा कर लिया।
  - आँकड़ों के मुताबिक जहाँ एक ओर वर्ष 2001-02 में कपास उत्पादन 14 मिलियन बेल्स (Bales) था, वहीं 2014-15 में यह 180 प्रतिशत बढ़कर 39 मिलियन बेल्स हो गया।
  - साथ ही भारत के कपास आयात में गिरावट आई और निर्यात में बढ़ोतरी हुई।
- हालाँकि, भारत की उत्पादकता प्रति इकाई क्षेत्र में उपज के मामले में अन्य प्रमुख कपास उत्पादक देशों की तुलना में काफी कम है, जिसका अर्थ है कि भारत में कपास उत्पादन के लिये अन्य देशों की अपेक्षा बहुत बड़े क्षेत्र का उपयोग किया जाता है।

हाइब्रिड कपास नीति

- ज्ञात हो कि भारत एकमात्र ऐसा देश है जो हाइब्रिड के रूप में कपास का उत्पादन करता है। हाइब्रिड्स को अलग-अलग आनुवंशिक गुणों वाले दो मूल उपभेदों के संगम से बनाया जाता है।
- देश में बीटी कपास हाइब्रिड के वाणिज्यिक प्रयोग को सरकार द्वारा वर्ष 2002 में मंज़ूरी दी गई थी। इस प्रकार के पौधों में मूल उपभेदों की अपेक्षा अधिक पैदावार की क्षमता होती है।
  - हाइब्रिड्स को उत्पादन के लिये उर्वरक तथा पानी की काफी अधिक आवश्यकता होती है।
- उल्लेखनीय है कि भारत के अतिरिक्त कपास का उत्पादन करने वाले अन्य सभी देश कपास के हाइब्रिड रूप का उत्पादन नहीं करते, बल्कि वे उन किस्मों का प्रयोग करते हैं जिनके लिये बीज स्व-निषेचन (Self-Fertilization) द्वारा उत्पादित किये जाते हैं।

हाइब्रिड कपास नीति का भारतीय किसानों पर प्रभाव

- चूँकि हाइब्रिड बीजों के माध्यम से उत्पादन करने के लिये किसानों को हर बार नया बीज खरीदना पड़ता है, इसलिये यह किसानों को आर्थिक रूप से काफी प्रभावित करता है।

- हाइब्रिड बीजों का उत्पादन केवल कंपनियों द्वारा ही किया जाता है, जिसके कारण मूल्य निर्धारित की शक्ति भी उन्ही के पास होती है, परिणामस्वरूप कीमतों पर नियंत्रण करना मुश्किल हो जाता है।

क्या भारतीय किसानों के लिये लाभकारी है BT कपास?

- इस विषय पर विभिन्न विश्लेषकों का अलग-अलग मत है। निश्चित रूप से बड़े किसानों और कॉरपोरेट क्षेत्र को बीटी-कपास की शुरुआत से लाभ हुआ है, किंतु देश के मध्यम और छोटे किसानों को बीटी-कपास के कारण नुकसान का सामना करना पड़ता है।
  - राज्यसभा की 301वीं समिति की रिपोर्ट के अनुसार, कीटनाशकों के उपयोग से मूल्य और मात्रा दोनों में काफी वृद्धि हुई है।
  - किसानों को बीटी कपास के बीज के लिये पारंपरिक बीजों की कीमत का लगभग तीन गुना भुगतान करने के लिये मजबूर किया गया, जिससे उनकी ऋणग्रस्तता और उपज पर निर्भरता काफी अधिक बढ़ गई।
  - ऋणग्रस्तता में वृद्धि से किसानों की आत्महत्या दर में वृद्धि हुई।

आगे की राह

- इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारत में बीटी-कपास ने भारतीय कपड़ा क्षेत्र को बहुत प्रोत्साहन दिया और इस तरह से बहुत सारे रोज़गार पैदा हुए, किंतु इस माध्यम से जो लाभ अर्जित किये गए वे प्रकृति में अल्पकालिक थे, दीर्घकाल में इसने देश के कपास उद्योग को किस प्रकार प्रभावित किया है इसे हाल के संकट में देखा जा सकता है।
- अत: यह बीटी-कपास को प्रतिस्थापित करने के लिये एक बेहतर और न्यायसंगत विकल्प की तलाश करने का सही समय है। इस संदर्भ में स्वदेशी रूप से विकसित कपास बीजों का सहारा लिया जा सकता है।

एयर इंडिया का निजीकरण

संदर्भ

केंद्र सरकार अपने पहले प्रयास की विफलता के पश्चात् एक बार पुन: लगातार घाटे और कर्ज के बोझ से दबी एयर इंडिया के रणनीतिक विनिवेश अथवा निजीकरण की प्रक्रिया को शुरू कर रही है। ज्ञात हो कि इससे पूर्व वर्ष 2018 में भी सरकार ने एयर इंडिया के विनिवेश का प्रयास किया था, किंतु विभिन्न कारणों से एयर इंडिया की खरीद के लिये सरकार को कोई भी खरीदार नहीं मिल सका, जिसके कारण सरकार का प्रयास विफल हो गया। अब एक बार पुन: सरकार कुछ बदलावों के साथ नए प्रस्ताव को लेकर आई है, उम्मीद है कि नए प्रस्ताव के माध्यम से सरकार को एयर इंडिया का खरीदार मिल सकेगा। विदित हो कि विश्व स्तर पर कई एयरलाइनों का निजीकरण सफल भी रहा है, जैसे- केन्या एयरवेज़ और सामोआ की पोल्नेसियन ब्लू का 20 वर्ष पहले निजीकरण किया गया था। इन दोनों एयरलाइनों से कई वर्षों तक लाभ प्राप्त हुआ तथा इन्होंने संबंधित देश में पर्यटन क्षेत्र के विकास में अमूल्य योगदान दिया। किंतु निजीकरण का प्रयास सदैव ही सफल नहीं रहा है, कई बार सरकारों को असफलता का सामना भी करना पड़ता है।

एयर इंडिया

- एयर इंडिया की शुरुआत 15 अक्तूबर, 1932 को जहाँगीर रतनजी दादाभाई टाटा (JRD Tata) द्वारा की गई थी। जे.आर.डी. टाटा की अगुवाई वाली टाटा संस (Tata Sons) की विमानन शाखा ने हवाई मेल भेजने के लिये इंपीरियल एयरवेज़ से कॉन्ट्रैक्ट लेने के पश्चात् टाटा एयर सर्विसेज़ (Tata Air Services) की स्थापना की थी।
- वर्ष 1938 में टाटा एयर सर्विसेज़ का नाम बदलकर टाटा एयरलाइंस कर दिया गया। टाटा एयरलाइंस ने वर्ष 1939 से 1945 तक चले द्वितीय विश्वयुद्ध (World War II) के दौरान महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।
- द्वितीय विश्वयुद्ध के समापन के पश्चात् 29 जुलाई, 1946 को टाटा एयरलाइंस एक सूचीबद्ध कंपनी बन गई और इसका नाम बदलकर एयर इंडिया कर दिया गया। वर्ष 1947 में स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार ने वर्ष 1948 में एयर इंडिया के 49 प्रतिशत हिस्सेदारी का अधिग्रहण कर लिया।
- वर्ष 1953 में भारत सरकार ने वायु निगम अधिनियम (Air Corporations Act) के माध्यम से एयर इंडिया की अधिकांश हिस्सेदारी का अधिग्रहण कर लिया और इसे 'एयर इंडिया इंटरनेशनल लिमिटेड' नया नाम दिया गया। हालाँकि जे.आर.डी. टाटा वर्ष 1977 तक 'एयर इंडिया इंटरनेशनल लिमिटेड' के अध्यक्ष बने रहे।

एयर इंडिया की वित्तीय स्थिति

- वर्तमान में एयर इंडिया के बेड़े में कुल 121 विमान और एयर इंडिया एक्सप्रेस के बेड़े में कुल 25 विमान मौजूद हैं। इसमें एयर इंडिया के 4 बोइंग 747-400 जंबोजेट विमानों को शामिल नहीं किया गया है, क्योंकि एयर इंडिया के खरीदार को ये बोइंग विमान नहीं दिये जाएंगे। इसके अलावा एयर इंडिया के पास बिल्डिंग्स के रूप में कुछ अचल संपत्ति भी है, जिसे सरकार अपने पास बरकरार रखेगी।
- आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2018-19 में संसाधनों के अल्प-उपयोग और ईंधन की कीमतों में बढ़ोतरी के कारण एयर इंडिया को कुल 8,556.35 करोड़ रुपए के नुकसान का सामना करना पड़ा था, जो कि एयर इंडिया का अब तक का सर्वाधिक नुकसान था। मौजूदा समय में एयर इंडिया पर कुल 60,074 करोड़ रुपए का ऋण है।

एयर इंडिया के निजीकरण का नया प्रस्ताव

- नए प्रस्ताव के अनुसार, सरकार एयर इंडिया और एयर इंडिया एक्सप्रेस लिमिटेड में अपनी 100 प्रतिशत हिस्सेदारी बेचेगी। साथ ही सरकार एयर इंडिया-SATS (एयर इंडिया और SATS लिमिटेड, सिंगापुर का संयुक्त उपक्रम) में अपनी 50 प्रतिशत हिस्सेदारी को भी बेचेगी। वहीं वर्ष 2018 में सरकार ने एयर इंडिया की मात्र 76 प्रतिशत हिस्सेदारी बेचने का प्रस्ताव किया था, जो कि सरकार के प्रयास की विफलता का मुख्य कारण था।
- एयर इंडिया के खरीदार को कुल ऋण में से 23,286.50 करोड़ रुपए के ऋण का भी अधिग्रहण करना होगा, जबकि वर्ष 2018 में यह 33,392 करोड़ रुपए था।
- सरकार ने एयर इंडिया के निजीकरण को लेकर जो नया प्रस्ताव पारित किया है, उसमें एयर इंडिया के कर्मचारियों के रोज़गार संबंधी मुद्दे को संबोधित नहीं किया गया है। एयर इंडिया और एयर इंडिया एक्सप्रेस में वर्तमान में कुल 17,984 कर्मचारी हैं जिसमें से 9,617 स्थायी कर्मचारी हैं।

निर्णय का प्रभाव

- विशेषज्ञों के अनुसार, यदि एयर इंडिया का संचालन किसी निजी संस्था के पास जाता है तो संस्था का प्राथमिक उद्देश्य एयर इंडिया को घाटे से बाहर निकलना होगा, जिससे एयर इंडिया कुछ ऐसे मार्गों पर संचालन बंद कर देगी जहाँ कंपनी को नुकसान का सामना करना पड़ रहा है। इसका प्रभाव एयर इंडिया के यात्री किराए पर पड़ सकता है।
- एयर इंडिया के निजीकरण से कंपनी में कार्यरत मौजूदा कर्मचारियों के रोज़गार पर भी प्रभाव देखने को मिल सकता है, जिसके कारण एयर इंडिया के विभिन्न कर्मचारी संघों ने सरकार के इस कदम का विरोध किया है।
    - एयर इंडिया में कार्यरत मौजूदा कर्मचारियों के अलावा सेवानिवृत्त कर्मचारियों को मिलने वाली पेंशन तथा अन्य सुविधाएँ भी एक बड़ा मुद्दा है।

निजीकरण का अर्थ

- निजीकरण का तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें किसी विशेष सार्वजनिक संपत्ति अथवा कारोबार का स्वामित्व सरकारी संगठन से स्थानांतरित कर किसी निजी संस्था को दे दिया जाता है। अत: यह कहा जा सकता है कि निजीकरण के माध्यम से एक नवीन औद्योगिक संस्कृति का विकास संभव हो पाता है।
- यह भी संभव है कि सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र को संपत्ति के अधिकारों का हस्तांतरण बिना विक्रय के ही हो जाए। तकनीकी दृष्टि से इसे अविनियमन (Deregulation) कहा जाता है। इसका आशय यह है कि जो क्षेत्र अब तक सार्वजनिक क्षेत्र के रूप में आरक्षित थे उनमें अब निजी क्षेत्र के प्रवेश की अनुमति दे दी जाएगी।
- वर्तमान में यह आवश्यक हो गया है कि सरकार स्वयं को 'गैर सामरिक उद्यमों' के नियंत्रण, प्रबंधन और संचालन के बजाय शासन की दक्षता पर केंद्रित करे। इस दृष्टि से निजीकरण का महत्त्व भी बढ़ गया है।

निजीकरण का लाभ

"व्यापार राज्य का व्यवसाय नहीं है", इस अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में निजीकरण से कार्य निष्पादन में बेहतरीन संभावना होती है।

- निजीकरण के माध्यम से सार्वजनिक कंपनियों को बाज़ार के अनुरूप दक्षता प्राप्त करने में मदद मिलेगी। निजीकरण से सरकारी क्षेत्र के उद्यमों से सरकारी नियंत्रण भी सीमित होता है और इससे कंपनियों को अपेक्षित निगमित शासन (Corporate Governance) की प्राप्ति होगी।

नोट :

- निजीकरण के परिणामस्वरूप, सार्वजानिक कंपनियों के शेयरों की पेशकश छोटे निवेशकों और कर्मचारियों को किये जाने से शक्ति और प्रबंधन का विकेंद्रीकरण हो सकेगा।
- निजीकरण का पूंजी बाज़ार पर लाभकारी प्रभाव होगा। निवेशकों को बाहर निकलने के सरल विकल्प मिलेंगे, मूल्यांकन और कीमत निर्धारण के लिये अधिक उत्कृष्ट नियम स्थापित करने में सहायता मिलेगी तथा निजीकृत कंपनियों को अपनी परियोजनाओं अथवा उनके विस्तार के लिये निधियाँ जुटाने में सहायता मिलेगी।

निष्कर्ष

वर्ष 2012 से अब तक सरकार एयर इंडिया को बचाने के लिये लगभग 30,500 करोड़ रुपए का निवेश कर चुकी है, किंतु इसके बावजूद एयर इंडिया वर्ष-दर-वर्ष नुकसान का सामना कर रही है। ऐसी स्थिति में एयरलाइन, उसमें कार्यरत कर्मचारियों की नौकरी और करदाताओं के पैसों को बचाने के लिये निजीकरण ही सबसे बेहतर विकल्प दिखाई दे रहा है। आवश्यक है कि निर्णय से संबंधित विभिन्न हितधारकों के हितों को ध्यान में रखकर आवश्यक विकल्पों की खोज की जाए।

अंतर्राष्ट्रीय संबंध

अमेरिका-ईरान संकट

संदर्भ

साल की शुरुआत में ही अमेरिका और ईरान के मध्य तनाव अपने चरम पर दिखाई दे रहा है और स्थिति लगभग युद्ध के कगार पर आ पहुँची है। विदित हो कि हाल ही में अमेरिका ने ईरान की कुद्स फोर्स के प्रमुख और इरानी सेना के शीर्ष अधिकारी मेजर जनरल कासिम सुलेमानी सहित सेना के कई अन्य अधिकारियों को बगदाद हवाई अड्डे के बाहर हवाई हमले में मार गिराया है। अमेरिका द्वारा किये गए हवाई हमले को मद्देनज़र रखते हुए इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि आने वाले दिनों में यह खतरा और अधिक बढ़ सकता है। ऐसे में यह आवश्यक है कि दोनों देशों के संबंधों का विश्लेषण कर यह जानने का प्रयास किया जाए कि इस प्रकार के घटनाक्रम के भारत पर क्या असर हो सकते हैं?

ईरान में प्रसिद्ध थे मेजर कमांडर सुलेमानी

- ईरान के सबसे प्रसिद्ध व्यक्तियों में से एक कासिम सुलेमानी को मध्य-पूर्व में सबसे शक्तिशाली मेजर जनरल के रूप में देखा जाता था। साथ ही ईरान के भावी राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के रूप में उनकी दावेदारी भी काफी प्रबल दिखाई दे रही थी।
  - कमांडर सुलेमानी के विषय में यह कहा जा सकता है कि मौजूदा ईरान को समझने के लिये यह ज़रूरी है कि पहले आप कासिम सुलेमानी को समझें।
- 62 वर्ष के कमांडर सुलेमानी ईरान के इस्लामिक रिवोल्यूशनरी गार्ड कॉर्प्स (Islamic Revolutionary Guard Corps-IRGC) की कुद्स फोर्स (Quds Force) के प्रमुख थे।
  - विदित हो कि बीते वर्ष अमेरिका ने IRGC को आतंकी संगठन घोषित करते हुए उस पर प्रतिबंध लगा दिया था।
- वर्ष 1998 से कुद्स फोर्स का प्रतिनिधित्व कर रहे कमांडर सुलेमानी न केवल ईरान के लिये खुफिया सूचनाओं को एकत्र करने और गुप्त सैन्य अभियानों के लिये प्रसिद्ध थे बल्कि वे ईरान के सर्वोच्च नेता अयातुल्ला अली खुमैनी से निकटता के लिये भी जाने जाते थे।
- कमांडर सुलेमानी ने ईरान के हालिया विदेशी अभियानों (मुख्य रूप से सीरिया और इराक) में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। ध्यातव्य है कि ईरान के ये विदेशी अभियान सीरिया में बशर अल-असद के शासन को बचाने और दोनों देशों (सीरिया और इराक) में इस्लामिक स्टेट (IS) को हराने हेतु महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

कमांडर सुलेमानी- प्रारंभिक जीवन

कासिम सुलेमानी का जन्म मार्च 1957 को केरमान प्रांत (ईरान) के एक गाँव में गरीब खेतिहर परिवार में हुआ था। 13 वर्ष की उम्र में वे शहर आ गए और कंस्ट्रक्शन मज़दूर के रूप में काम करना शुरू कर दिया, बाद में उन्होंने केरमान जल संगठन (Kerman Water Organization) में भी काम किया। सुलेमानी वर्ष 1979 में ईरान की इस्लामिक क्रांति के बाद इस्लामिक रिवोल्यूशनरी गार्ड कॉर्प्स (IRGC) में शामिल हो गए। 22 अक्तूबर 1980 को जब सद्दाम हुसैन ने ईरान पर आक्रमण करते हुए ईरान-इराक युद्ध की शुरुआत की तो 8 वर्षीय इस लंबे युद्ध में लगभग 1 मिलियन से अधिक लोग मारे गए। इसी दौरान सुलेमानी भी ईरान की ओर से एक सैन्य टुकड़ी का नेतृत्व करते हुए युद्ध क्षेत्र में शामिल हो गए और उन्हें जल्द ही उनकी बहादुरी के लिये जाना जाने लगा तथा साथ ही उनकी रैंक में भी वृद्धि हुई। युद्ध के पश्चात् उन्हें केरमान प्रांत (ईरान) में IRGC के कमांडर के रूप में नियुक्त किया गया और जल्द वे IRGC के कुद्स फोर्स के प्रमुख के पद तक पहुँच गए। सुलेमानी को सीरिया में उस रणनीति के लिये भी बहुत श्रेय दिया गया था जिसने राष्ट्रपति बशर अल-असद को विद्रोही ताकतों को हटाने एवं प्रमुख शहरों और कस्बों को फिर से हासिल करने में मदद की थी।

ईरान-अमेरिका संबंधों पर प्रभाव

ईरान और अमेरिका के संबंध बीते कुछ वर्षों से अनवरत बिगड़ते जा रहे हैं और विशेषज्ञों का मानना है कि हालिया घटना इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। अमेरिका के इस हमले ने मध्य-पूर्व को अशांति की कगार पर ला खड़ा किया है। ईरान के राष्ट्रपति हसन

रूहानी ने कहा है कि "अमेरिका का यह हमला ईरान को उसका (अमेरिका) विरोध करने के लिये और अधिक मज़बूत बनाएगा", वहीं मेजर जनरल कासिम सुलेमानी की मौत को लेकर रिवोल्यूशनरी गार्ड्स का कहना है कि "सभी अमेरिका विरोधी ताकतें मिलकर इस हमले का बदला लेंगी।" अमेरिका के इस हवाई हमले को लेकर यह कहा जा सकता है कि इसका प्रभाव मध्य-पूर्व के उन सभी देशों में देखने को मिलेगा जहाँ ईरान और अमेरिका वर्चस्व के लिये प्रतिस्पर्द्धा कर रहे हैं। ऐसे में यह स्पष्ट है कि इससे ईरान और अमेरिका के मध्य संघर्ष में वृद्धि होगी एवं दोनों देशों के संबंध पहले से और अधिक खराब हो जाएंगे।

अमेरिका-ईरान संघर्ष का इतिहास

दोनों देशों के बीच तनातनी तभी से ज़्यादा बढ़ी है, जब अमेरिका ने ईरान के साथ किये परमाणु समझौते से अपने को अलग कर लिया था। हालाँकि दोनों देशों के मध्य संघर्ष का इतिहास काफी पुराना माना जाता है। विशेषज्ञ मानते हैं कि इसकी शुरुआत वर्ष 1953 में तब हुई जब अमेरिका और ब्रिटेन ने मिलकर ईरान में लोकतांत्रिक तरीके से चुने गए प्रधानमंत्री मोहम्मद मोसादेग को अपदस्थ कर शाह पहलवी को सत्ता सौंप दी थी। सत्ता परिवर्तन के लगभग 26 वर्षों बाद ईरान में इस्लामिक क्रांति हुई और एक नए नेता अयातुल्लाह रुहोल्लाह खुमैनी का आगमन हुआ। ज्ञात हो कि खुमैनी, शाह पहलवी के नेतृत्व में ईरान के पश्चिमीकरण और अमेरिका पर बढ़ती निर्भरता के घोर विरोधी थे। ईरान में हुई वर्ष 1979 की इस्लामिक क्रांति के बाद वहाँ रूढ़िवादिता का प्रसार होता गया और खुमैनी की उदारता में भी अचानक से परिवर्तन आया। उन्होंने विरोधी आवाज़ों को दबाना शुरू कर दिया तथा इस्लामिक रिपब्लिक ऑफ ईरान की लोकतांत्रिक आवाज़ लगभग समाप्त हो गई। इस क्रांति के तत्काल बाद ईरान और अमेरिका के राजनयिक संबंध भी खत्म हो गए। राजधानी तेहरान में ईरानी छात्रों के एक समूह ने अमेरिकी दूतावास को अपने कब्ज़े में ले लिया और 52 अमेरिकी नागरिकों को 444 दिनों तक बंधक बनाकर रखा गया। माना जाता है कि इस घटना को खुमैनी का भी अप्रत्यक्ष समर्थन प्राप्त था।

हमले पर अमेरिका का पक्ष

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने इस हमले को "युद्ध रोकने के उद्देश्य से किया गया हमला" करार दिया है। ट्रंप का कहना है कि उन्होंने अमेरिका की सुरक्षा को ध्यान में रख कर इस हमले के आदेश दिये थे। अमेरिका का मानना है कि कमांडर सुलेमानी और उनकी कुद्स फोर्स अमेरिका और कई अन्य देशों के नागरिकों की मौत के लिये ज़िम्मेदार थी। बीते वर्ष 27 दिसंबर की घटना के लिये भी अमेरिका ने ईरान और कमांडर सुलेमानी को ज़िम्मेदार ठहराया था, विदित हो कि इस हमले में कई अमेरिकी तथा इराकी लोगों की मौत हो गई थी।

भारत पर प्रभाव- तेल संकट

मध्य-पूर्व का हालिया घटनाक्रम भारत के हितों को खासा प्रभावित कर सकता है। ज्ञात हो कि भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा तेल उपभोक्ता है, जो कच्चे तेल की अपनी 80 प्रतिशत से अधिक और प्राकृतिक गैस की 40 प्रतिशत ज़रूरतों को पूरा करने के लिये आयात पर निर्भर रहता है। हालाँकि भारत लगातार तेल सुरक्षा को बढ़ावा देने का प्रयास कर रहा है, परंतु विगत कुछ वर्षों में देश का घरेलू तेल और प्राकृतिक गैस उत्पादन काफी धीमा रहा है, जिससे देश और अधिक आयात पर निर्भर हो गया है। ऐसे में तेल बाज़ार को प्रभावित करने वाला कोई भी घटनाक्रम भारत पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। आँकड़ों पर गौर करें तो कमांडर सुलेमानी के काफिले पर हुए हमले के कुछ ही घंटों में वैश्विक बाज़ार में तेल की कीमतों में 3 प्रतिशत की बढ़ोतरी देखी गई है। तेल की कीमतों में बढ़ोतरी बिलकुल भी भारत के हित में नहीं है, भारतीय अर्थव्यवस्था की माली स्थिति पहले से काफी खराब है और तेल की बढ़ी हुई कीमतों का बोझ भारत की अर्थव्यवस्था के लिये सहनीय नहीं होगा।

भारत के समक्ष एक राजनयिक चुनौती भी उत्पन्न हो गई है, क्योंकि भारत कभी नहीं चाहेगा कि उसे विश्व के दो महत्त्वपूर्ण देशों में से किसी एक का चुनाव करना पड़े। जहाँ एक ओर भारत अमेरिका जैसी बड़ी शक्ति के साथ अपने संबंधों को खराब नहीं करना चाहेगा, वहीं ईरान भी पश्चिमी एशिया में एक बड़ी शक्ति के रूप में उभर रहा है। इसके अतिरिक्त अफगानिस्तान तक पहुँचने के लिये भारत ईरान में चाबहार बंदरगाह विकसित कर रहा है। ऐसे में इस क्षेत्र में अशांति का माहौल भारत के हितों को प्रभावित कर सकता है।

अमेरिका-चीन तनाव के नए आयाम

संदर्भ

अमेरिका और चीन के मध्य लंबे समय से चल रहा व्यापार युद्ध अपने अंतिम चरण में दिखाई दे रहा है। विगत कुछ महीनों से दोनों देश व्यापार समझौते को अंतिम रूप देने का अथक प्रयास कर रहे हैं, इस क्रम में पहला सुव्यवस्थित प्रयास तब दिखाई दिया जब अमेरिका ने चीन के

160 अरब डॉलर के सामानों पर शुल्क लगाने के विचार को कुछ समय के लिये टाल दिया। हालाँकि मौजूदा समय में दोनों देशों के मध्य प्रतिद्वंद्विता व्यापार से कहीं आगे बढ़ चुकी है। अब आर्थिक मुद्दों से इतर हॉन्गकॉन्ग की स्वायत्तता, उइगर मानवाधिकार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल स्पेस और 5G जैसे मुद्दे विवाद की नवीन पृष्ठभूमि बन गए हैं। ऐसे में यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि विश्व की दो बड़ी शक्तियों के मध्य संघर्ष का विश्व के विभिन्न देशों पर किस प्रकार का प्रभाव होगा और विशेष तौर पर भारत के लिये इसके क्या मायने हैं?

ऊर्जा संबंधी चिंता

- हाल के कुछ वर्षों में अमेरिका ने अपनी ऊर्जा संबंधी आयात निर्भरता को काफी कम किया है जिससे वैश्विक बाज़ार में मांग में कमी आने के कारण तेल की कीमतें काफी कम हो गई थीं, जो कि भारत के लिये एक संतोषजनक खबर थी क्योंकि भारत कच्चे तेल की अपनी 80 प्रतिशत से अधिक और प्राकृतिक गैस की 40 प्रतिशत ज़रूरतों को पूरा करने के लिये आयात पर निर्भर रहता है।
    - वैश्विक बाज़ार में तेल की कम कीमतें भारत को अपने चालू खाते घाटे को संबोधित करने में मदद कर सकती थीं।
- किंतु ईरान की कुद्स फोर्स के प्रमुख और इरानी सेना के शीर्ष अधिकारी मेजर जनरल कासिम सुलेमानी की मृत्यु के बाद वैश्विक बाज़ार में तेल की कीमतों में अचानक 4 प्रतिशत की बढ़ोतरी देखी गई है।
- भारत के विपरीत चीन ईरान से काफी अधिक मात्रा में कच्चे तेल का आयात करता है और ईरान का सबसे बड़ा खरीदार भी है। हाल ही में चीन ने घोषणा की थी कि वह ईरान के तेल, गैस और पेट्रोकेमिकल क्षेत्रों को विकसित करने में 280 बिलियन डॉलर का निवेश करेगा।
- मध्य-पूर्व में हुए हालिया घटनाक्रम को लेकर भी चीन ने अपना पक्ष रखते हुए अमेरिका से संयम बरतने एवं तनाव को और अधिक न बढ़ाने का आग्रह किया है। इस विषय पर चीन के पक्ष से स्पष्ट है कि वह स्वयं को 'ईरान से सहानुभूति रखने वाले' के रूप में प्रदर्शित करना चाहता है। ऐसे में चीन की यह नीति अमेरिका और चीन के मध्य प्रतिद्वंद्विता एवं तनाव को और अधिक बढ़ा देगी।
- अनुमानत: वित्तीय वर्ष 2019-20 में अमेरिका से भारत का ऊर्जा आयात 10 बिलियन डॉलर तक पहुँच जाएगा। जहाँ ऊर्जा आयात के लिये अमेरिका पर भारत की निर्भरता बढ़ रही है, वहीं चीन मध्य-पूर्व में अपनी उपस्थिति को और अधिक मज़बूत कर रहा है।
- यह कहा जा सकता है कि भविष्य में ऊर्जा क्षेत्र दोनों के मध्य प्रतिद्वंद्विता के लिये एक नई भूमि तैयार करेगा।

तकनीक के क्षेत्र में

- स्पष्ट है कि भविष्य में जिस देश के पास सर्वाधिक उन्नत तकनीक होगी वही वैश्विक पटल पर एक मज़बूत शक्ति के रूप में उभर कर सामने आएगा। यही कारण है कि विश्व की दो बड़ी शक्तियाँ (अमेरिका और चीन) तकनीक के क्षेत्र में अपना वर्चस्व कायम करने के लिये भरसक प्रयास कर रही हैं।
- कृत्रिम बुद्धिमत्ता, रोबोटिक्स और अंतरिक्ष प्रौद्योगिकियों पर चीन के महत्त्वाकांक्षी रुझान ने अमेरिकी प्रशासन के समक्ष एक बड़ी चुनौती उत्पन्न कर दी है।
- वर्ष 2019 की शुरुआत में अमेरिका ने चीन की बड़ी टेक्नोलॉजी कंपनी हुआवे (Huawei) पर जासूसी का आरोप लगाते हुए उस पर प्रतिबंध लगा दिया था। अमेरिकी इंटेलिजेंस विभाग का मानना था कि हुआवे द्वारा तैयार किये जा रहे उपकरण देश की आंतरिक सुरक्षा के लिये खतरा पैदा कर सकते हैं।
- इसके अतिरिक्त दिसंबर 2018 में अमेरिकी अधिकारियों के कहने पर हुआवे के मुख्य वित्तीय अधिकारी (CFO) मेंग वानझो को कनाडा में गिरफ्तार कर लिया गया था।
- दोनों देशों के मध्य चल रहे तकनीक युद्ध (Tech War) में अब तक भारत इसे अपने अनुकूल नहीं बना पाया है। आँकड़ों पर गौर करें तो वर्ष 2018 में चीन की तीन बड़ी टेक कंपनियों-बाईडू, अलीबाबा और टेंसेंट ने भारत के स्टार्ट-अप्स में तकरीबन 5 बिलियन डॉलर का निवेश किया था।
    - भारत इस अवसर का उपयोग कर चीन को भारत के IT निर्यातों के लिये अपना बाज़ार खोलने हेतु मजबूर कर सकता था, किंतु अब तक ऐसा संभव नहीं हो पाया।
- अमेरिका और चीन के बीच चल रहे तकनीक युद्ध से भारत की सामरिक स्वायत्तता को भी खतरा है। विदित हो कि हाल ही में भारत ने अमेरिका द्वारा प्रतिबंधित कंपनी हुआवे को देश में 5G ट्रायल के आयोजन में हिस्सा लेने की अनुमति दे दी है।

नोट :

हॉन्गकॉन्ग की स्वायत्तता और उइगर समुदाय के मानवाधिकार का मुद्दा

- विगत वर्ष हॉन्गकॉन्ग में लोकतंत्र के समर्थकों के प्रति एकजुटता दिखाते हुए अमेरिका ने हॉन्गकॉन्ग मानवाधिकार और लोकतंत्र अधिनियम पारित किया था, जिसके तहत अमेरिकी प्रशासन को इस बात का आकलन करने की शक्ति दी गई है कि हॉन्गकॉन्ग में अशांति की वजह से इसे विशेष क्षेत्र का दर्जा दिया जाना उचित है या नहीं।
- चीन की सरकार ने हॉन्गकॉन्ग को उसका आंतरिक विषय बताते हुए अमेरिका के इस अधिनियम को चीन की संप्रभुता पर खतरा माना था।
- इसके अलावा हाल ही में अमेरिका के निचले सदन ने चीन के उइगर मुसलमानों के संबंध में भी एक विधेयक पारित किया था। हालाँकि यह विधेयक अभी ऊपरी सदन सीनेट (Senate) द्वारा पारित होना बाकी है।
    - अधिनियम बनने के पश्चात् इसके माध्यम से अमेरिका द्वारा चीन पर उसके शिनजियांग (Shinxiang) प्रांत के मुस्लिम अल्पसंख्यकों के साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार के कारण कई प्रतिबंध लगाए जा सकेंगे। इनमें वरिष्ठ चीनी अधिकारियों तथा चीन को होने वाले निर्यात पर प्रतिबंध भी शामिल है।
    - ज्ञात हो कि अमेरिका के इस कदम के प्रत्युत्तर में चीन ने अमेरिकी सेना के जहाज़ों तथा एयरक्राफ्ट को हॉन्गकॉन्ग में जाने से मना कर दिया था।

व्यापार युद्ध और भारत

- जब एक देश दूसरे देश के प्रति संरक्षणवादी रवैया अपनाता है अर्थात् वहाँ से आयात होने वाली वस्तुओं और सेवाओं पर शुल्क बढ़ाता है तो दूसरा देश भी जवाबी कार्रवाई में यही प्रक्रिया अपनाता है। ऐसी संरक्षणवादी नीतियों के प्रभाव को व्यापार युद्ध (Trade War) कहते हैं।
- अमेरिका और चीन बीते लगभग 17 महीनों से व्यापार युद्ध में उलझे हुए हैं। विश्लेषकों को उम्मीद थी कि इस व्यापार युद्ध से भारत को काफी लाभ होगा, परंतु स्टेट ऑफ इंडिया (SBI) द्वारा जारी जुलाई 2019 की एक रिपोर्ट बताती है कि अमेरिका-चीन के व्यापार युद्ध से भारत को काफी कम लाभ हुआ है।
- आँकड़ों के मुताबिक, वर्ष 2019 की पहली छमाही में व्यापार युद्ध के कारण अमेरिकी बाज़ार में चीन के निर्यात में लगभग 35 बिलियन डॉलर की कमी आई थी। इसमें से लगभग 14 बिलियन डॉलर की आपूर्ति अमेरिकी उत्पादकों द्वारा की गई, जबकि शेष 62 प्रतिशत यानी 21 बिलियन डॉलर की आपूर्ति अन्य देशों द्वारा की गई। अन्य देशों द्वारा की गई आपूर्ति में भारत का हिस्सा मात्र 755 मिलियन डॉलर था, जो कि स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि भारत इस अवसर का फायदा प्राप्त नहीं कर सकता था।

भारत-ब्राज़ील संबंध

संदर्भ

नवीन विश्व की विशेष सामरिक संरचना, उपनिवेशवाद से स्वतंत्रता के पश्चात् भारत और ब्राज़ील की महत्वाकांक्षाओं एवं राष्ट्रीय हितों की समानता की पृष्ठभूमि में दोनों देशों के संबंधों का लगभग 5 दशक पुराना इतिहास स्वयं में कई आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व सामाजिक परतों को समेटे हुए है। यही वजह है कि दोनों देशों के संबंध समय के साथ नए आयाम स्थापित कर रहे हैं। इसी दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम के रूप में 71वें गणतंत्र दिवस के अवसर पर ब्राज़ील के राष्ट्रपति जेयर बोल्सोनारो को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया है। ज्ञात हो कि प्रधानमंत्री मोदी ने उन्हें समारोह में शामिल होने का आमंत्रण बीते वर्ष नवंबर माह में आयोजित ब्रिक्स सम्मेलन के दौरान दिया था। जेयर बोल्सोनारो की भारत यात्रा के दौरान विभिन्न व्यापार समझौतों और जैव ईंधन तथा प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में सहयोग पर चर्चा की जाएगी। इस यात्रा से दोनों देशों के कूटनीतिक संबंधों को भी नई दिशा प्राप्त होगी।

कौन हैं जेयर बोल्सोनारो?

- जेयर मेसियस बोल्सोनारो का जन्म 21 मार्च, 1955 को ब्राज़ील के कैंपिनास शहर में हुआ था। सैनिक स्कूल से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वे ब्राज़ील की सेना में भर्ती हुआ और लंबे अरसे तक सेना में अपनी सेवाएँ दी।

नोट :

- वर्ष 1988 में सेना छोड़ने के पश्चात् वर्ष 1989 में रियो डी जेनेरियो नगर परिषद का चुनाव लड़ा और जीत दर्ज की। दो वर्ष बाद उन्होंने ब्राज़ील के फेडरल चैंबर ऑफ डेप्युटी (Chamber of Deputies) में रियो डी जेनेरियो का प्रतिनिधित्व करने वाली एक सीट जीती जिसमें वे आगामी सात वर्षों तक लगातार चुनाव जीते।
- बीते कई वर्षों में जेयर बोल्सोनारो ब्राज़ील की राजनीति में हाशिये पर रहे, किंतु भ्रष्टाचार में संलित होने के कारण देश के मुख्य धारा के राजनीतिक वर्ग की छवि धूमिल होने से वे अचानक ब्राज़ील की राजनीति में काफी लोकप्रिय हो गए।
- अपने चुनावी अभियान के दौरान बोल्सेनारो को अपने कट्टरपंथी विचारों के लिये ब्राज़ील में कड़े विरोध का सामना करना पड़ा है। उन्होंने नस्ल, लिंग और यौन अभिविन्यास जैसे विषयों पर कई विवादास्पद टिप्पणियाँ की हैं। इसके अलावा वे अपने राजनीतिक कार्यकाल की शुरुआत से ही सैन्य तानाशाही युग की वकालत करते रहे हैं।
- जलवायु परिवर्तन को लेकर भी जेयर बोल्सोनारो की नीतियाँ काफी हद तक विवादित रही हैं। अपने चुनावी अभियान के दौरान उन्होंने जलवायु परिवर्तन को लेकर हो रही विभिन्न भविष्यवाणियों को गलत करार देते हुए व्यवसायियों को जंगलों के वाणिज्यिक प्रयोग की अनुमति देने का समर्थन किया था।

क्यों महत्त्वपूर्ण है ब्राज़ील?

- ब्राज़ील में तेल उत्पादन काफी तेज़ी से हो रहा है और आँकड़ों के मुताबिक जल्द ही ब्राज़ील दुनिया के शीर्ष-5 तेल उत्पादक देशों में शामिल होगा। ज्ञात हो कि ब्राज़ील भारत को कच्चे तेल का सबसे अधिक निर्यात करता है।
- भारत और ब्राज़ील विभिन्न द्विपक्षीय मंचों जैसे- ब्रिक्स (BRICS), G-20, G4, IBSA और इंटरनेशनल सोलर अलायंस (ISA) आदि तथा बड़े बहुपक्षीय निकायों जैसे- UN, WTO, UNESCO और WIPO आदि साझा करते हैं।
- 'पृथ्वी के फेफड़े' कहे जाने वाले अमेज़न वर्षा वन ब्राज़ील के लगभग 40 प्रतिशत हिस्से में फैले हुए हैं। इस लिहाज़ से ब्राज़ील के पास वन संपदा का एक विशाल भंडार मौजूद है। अमेज़न वर्षा वन जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण हैं, जिसके कारण ब्राज़ील भी इस संदर्भ में काफी महत्त्वपूर्ण है।
- ब्राज़ील के अमेज़न वर्षा वन पृथ्वी के बड़े पारिस्थितिक नियामक हैं क्योंकि ये प्रत्येक वर्ष 2 बिलियन टन कार्बन डाइऑक्साइड ग्रहण करते हैं और पृथ्वी पर उपलब्ध कुल ऑक्सीजन में से 20 प्रतिशत ऑक्सीजन छोड़ते हैं।
- हालाँकि कई रिपोर्ट्स में सामने आया है कि ब्राज़ील सरकार की प्रो-एग्रीबिज़नेस नीतियों (Pro-Agrobusiness Policies) के कारण वहाँ वनों की कटाई काफी अधिक बढ़ गई है।

भारत ब्राज़ील संबंध

- वाणिज्यिक संबंध: संपूर्ण लैटिन अमेरिका और कैरिबियन क्षेत्र में ब्राज़ील, भारत के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण व्यापारिक साझेदारों में से एक है। भारत-ब्राजील द्विपक्षीय व्यापार में पिछले दो दशकों में काफी वृद्धि हुई है। हालाँकि कीमतों में वैश्विक गिरावट और ब्राज़ील में आई आर्थिक मंदी ने ब्राज़ील के समग्र व्यापार को प्रभावित किया है। इसका प्रतिकूल प्रभाव दोनों देशों के व्यापार पर भी देखने को मिला था जब यह वर्ष 2015 और 2016 में क्रमश: 7.9 बिलियन डॉलर और 5.64 बिलियन डॉलर तक आ गया था। किंतु इन आँकड़ों में वर्ष 2018-19 में कुछ सुधार देखने को मिला और दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय व्यापार 8.2 बिलियन डॉलर पहुँच गया, जो कि पिछले वर्ष के मुकाबले 7 प्रतिशत अधिक था।
- निवेश संबंध: आँकड़ों के मुताबिक वर्ष 2018-19 में भारतीय कंपनियों ने ब्राज़ील में लगभग 6 बिलियन डॉलर का निवेश किया। हालाँकि इस दौरान ब्राज़ील से भारत में किया गया निवेश काफी कम रहा, किंतु आने वाले समय में इसके बढ़ने की उम्मीद है। भारतीय निवेशकों ने मुख्यत: ब्राज़ील के IT, फार्मास्युटिकल, ऊर्जा, कृषि-व्यवसाय, खनन और इंजीनियरिंग क्षेत्रों में निवेश किया है। जबकि ब्राज़ील के निवेशकों ने मुख्यत: भारत के ऑटोमोबाइल, IT, खनन, ऊर्जा और जैव ईंधन क्षेत्रों में निवेश किया।
- रक्षा संबंध: भारत और ब्राजील ने रक्षा सहयोग के लिये वर्ष 2003 में एक समझौते पर हस्ताक्षर किया जिसकी पुष्टि वर्ष 2006 में ब्राज़ील द्वारा की गई। यह समझौता रक्षा संबंधी मामलों विशेष रूप से अनुसंधान और विकास, सैन्य प्रशिक्षण और सैन्य अभ्यास आदि में सहयोग का आह्वान करता है। 24 दिसंबर, 2007 को ब्रासीलिया स्थित भारत के दूतावास में डिफेंस विंग की स्थापना की गई। इसके पश्चात् 14 अप्रैल, 2009 को ब्राज़ील ने भी नई दिल्ली स्थित अपने दूतावास में डिफेंस विंग की स्थापना की। इसके अलावा दोनों देशों के मध्य संयुक्त रक्षा समिति (JDC) की बैठकें भी समय-समय पर आयोजित की जाती हैं। विदित हो कि अब तक कुल 6 संयुक्त रक्षा समिति (JDC) की बैठकें आयोजित की जा चुकी हैं।

नोट :

- सांस्कृतिक संबंध: ब्राज़ील में भारत की संस्कृति, धर्म, कला और दर्शन को लेकर काफी रुचि है। ब्राज़ील पहुँचने वाला पहला शास्त्रीय भारतीय कला रूप भरतनाट्यम था; जिसके पश्चात् ओडिसी, कथक और कुचिपुड़ी ब्राज़ील पहुँचे। पूरे ब्राजील में योग सिखाने वाले कई संगठन हैं। रामकृष्ण मिशन, इस्कॉन, भक्ति वेदांत फाउंडेशन जैसे आध्यात्मिक संगठन भी ब्राज़ील में मौजूद हैं। इसके अलावा ब्राज़ील के 12 प्रमुख शहरों में वर्ष 2015 में पहला अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस आयोजित किया गया था।

भारत-ब्राज़ील संबंध ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ब्राज़ील और भारत के मध्य संप्रभु राष्ट्रों के रूप में वार्त्ता द्वितीय विश्व युद्ध के बाद शुरू हुई थी, जब दोनों देश (ब्राज़ील और भारत) विशाल राष्ट्र-राज्यों के रूप में विश्व के सामने आए। जनसंख्या के मामले में ब्राज़ील और भारत विश्व में क्रमश: पाँचवें और दूसरे स्थान पर हैं जबकि क्षेत्रफल के मामले में दोनों देश विश्व में क्रमश: पाँचवें और सातवें स्थान पर हैं। ब्राज़ील के साथ भारत के राजनयिक संबंध वर्ष 1948 में स्थापित हुए जब भारत ने 3 मई, 1948 को रियो डी जेनेरियो में दूतावास की स्थापना की। अगस्त 1971 में इस दूतावास को ब्रासीलिया में स्थानांतरित कर दिया गया। शीतयुद्ध के दौरान दोनों देशों के मध्य संबंधों का ताना-बाना टूटता दिखाई दिया। दरअसल गोवा की आज़ादी और उसे भारत में शामिल किये जाने को लेकर ब्राज़ील के रुख ने दोनों देशों के संबंधों को काफी प्रभावित किया था। ब्राज़ील गोवा में पुर्तगाल की मौजूदगी को सही मानता था और उसने गोवा को आज़ाद कराने को लेकर भारत द्वारा की गई सैन्य कार्यवाही को भी अंतर्राष्ट्रीय नियमों का उल्लंघन बताया था।

दोनों देशों के बीच कई हैं समानताएँ

- लगभग 15,000 मील की दूरी और ऐतिहासिक विविधता के कारण दोनों देशों की संस्कृति काफी अलग-अलग हैं, किंतु इसके बावजूद भी दोनों देशों के मध्य कई समानताएँ हैं। मसलन भारत और ब्राज़ील दोनों ही देशों में एक जीवंत लोकतंत्र, स्वतंत्र न्यायपालिक और महत्त्वपूर्ण गैर-सरकारी संगठन (NGO) हैं।
- दोनों ही देश विकासशील देश हैं। हालाँकि क्षेत्रफल की दृष्टि से ब्राज़ील का आकार भारत से ढाई गुना अधिक है, किंतु अर्थव्यवस्था के मामले में दोनों देश एक ही समान हैं। दोनों ही देशों में धर्म, भाषा और सांस्कृतिक विविधता मौजूद है।

हालिया दौरे का महत्त्व

- राष्ट्रपति जेयर बोल्सोनारो का यह दौरा दोनों देशों के लिये सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह दोनों देशों के संबंधों को नई ऊर्जा प्रदान करने और केंद्रित रूप से आगे बढ़ने में मदद करेगा। बोल्सोनारो की इस यात्रा से दोनों देशों के बहुआयामी संबंधों के और अधिक विस्तार होने की उम्मीद है।
- उल्लेखनीय है कि जेयर बोल्सोनारो के साथ आठ मंत्री, चार सांसद, ब्राज़ील की संसद में ब्राज़ील-भारत मैत्री समूह के अध्यक्ष और एक व्यापारिक प्रतिनिधिमंडल भी शामिल हैं।

इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष

संदर्भ:

वैश्विक परिदृश्य में संघर्ष का इतिहास अत्यंत पुराना है जहाँ मानव हड़प्पा काल से ही अपनी सामरिक और भू-राजनीतिक शक्तियों को लेकर संघर्ष के मार्ग का चयन करता आ रहा है। ये सामरिक व्यवस्थाएँ काल पर्यंत अपने स्वरूप और आयामों को बदलती रहीं, इसमें कभी सामरिक बढ़त के लिये संघर्ष किया गया तो कभी धार्मिक, नस्लीय उन्माद जैसे उत्प्रेरक बलों की संवेदना से प्रभावित मानव ने संघर्ष के मार्ग को अनवरत जारी रखा। उदाहरणस्वरूप शक-सातवाहन जैसे संघर्ष कई शादाब्दियों तक अनवरत जारी रहे तथा आज भी इन विजयों को अतिसम्मान की दृष्टि से देखा जाता है किंतु हम इन्हीं उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में यह भूल जाते हैं कि इन संघर्षों की पृष्ठभूमि में मानव ने मानवता को कुचलकर अपनी कुछ क्षुद्र महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति की है। इसके विपरीत सम्राट अशोक द्वारा युद्ध का मार्ग छोड़कर बौद्ध धर्म को अंगीकार करने जैसे उदाहरण भी इतिहास में संकलित हैं लेकिन इन उदाहरणों की संख्या कम होने के साथ ही इनको लेकर वर्तमान मानव की भावनाओं की प्रबलता भी धीमी है। ऐतिहासिकता की इस पृष्ठभूमि में मानव संघर्षों के उन्मूलन हेतु स्थापित विनियमन और संस्थाओं की उपस्थिति के बावजूद इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष जैसे मानवता की प्रगति को सीमित करने वाले उदाहरण बने हुए हैं।

वर्तमान परिदृश्य:

हाल ही में अमेरिका द्वारा मध्य पूर्व शांति योजना (Middle East Peace Plan) की घोषणा की गई थी। अमेरिका द्वारा घोषित इस इस योजना का मुख्य उद्देश्य इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष से संबंधित विभिन्न मुद्दों जैसे- इज़राइल की सीमा, फिलिस्तीनी शरणार्थियों की स्थिति, सुरक्षा संबंधी चिंताएँ और येरुशलम आदि को संबोधित कर क्षेत्र विशेष में शांति स्थापित करना है। जहाँ एक ओर इज़राइल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू ने इस शांति योजना को 'स्थायी शांति का यथार्थवादी मार्ग बताया है, वहीं फिलिस्तीन के राष्ट्रपति महमूद अब्बास ने इसे 'साजिश' करार देते हुए इसका विरोध किया है और इसके जवाब में फिलिस्तीन ने स्वयं को ओस्लो समझौते से अलग कर लिया है।

अमेरिका की मध्य पूर्व शांति योजना

- येरुशलम पर इज़राइल और फिलिस्तीन दोनों ही अपना-अपना दावा प्रस्तुत करते हैं और दोनों ही उसे छोड़ने को तैयार नहीं हैं। अमेरिका की शांति योजना के अनुसार, येरुशलम को विभाजित नहीं किया जाएगा और यह 'इज़राइल की संप्रभु राजधानी' होगी।
- शांति योजना के अनुसार, फिलिस्तीन येरुशलम के पूर्व में अपनी राजधानी स्थापित करेगा, जिसका नाम बदलकर 'अल कुद्स' (Al Quds) रखा जा सकता है, जो कि येरुशलम का अरबी अनुवाद है।
- योजना के मुताबिक, 'येरुशलम की पवित्र धरती उसी मौजूदा शासन व्यवस्था (यानी इज़राइल) के अधीन होगी' और 'इसे सभी धर्मों के शांतिपूर्ण उपासकों एवं पर्यटकों के लिये खुला रखा जाएगा'।
- फिलीस्तीनी क्षेत्र के अंदर स्थित इज़राइली इलाके इज़राइल राज्य का हिस्सा बन जाएंगे और एक प्रभावी परिवहन प्रणाली के माध्यम से उन्हें इज़राइल से जोड़ा जाएगा। वेस्ट बैंक में अवैध इज़राइली बस्तियों को कानूनी और स्थायी बनाने का विचार फिलीस्तीनी सरकार के लिये एक चिंता का विषय है।
- शांति योजना के अनुसार, जॉर्डन घाटी जो कि इज़राइल की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, इज़राइल की संप्रभुता के तहत बनी रहेगी।
- यदि फिलीस्तीन इस योजना को स्वीकार करता है तो अमेरिका वहाँ आगामी 10 वर्षों में 50 बिलियन डॉलर का निवेश करेगा, जिसे वहाँ के निजी क्षेत्र के विकास को बढ़ावा मिलेगा तथा शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्र में सुधार हो सकेगा, इससे फिलीस्तीन के नागरिकों के जीवन स्तर की गुणवत्ता भी सुधरेगी।
- अमेरिका द्वारा प्रस्तुत शांति योजना प्रथम दृष्टया इज़राइल के पक्ष में झुकी हुई दिखाई देती है, जिसके कारण फिलीस्तीन ने इसका समर्थन करने से इनकार कर दिया है।

ओस्लो समझौता

- ओस्लो समझौता 1990 के दशक में इज़राइल और फिलीस्तीन के बीच हुए समझौतों की एक श्रृंखला है।
- पहला ओस्लो समझौता वर्ष 1993 में हुआ जिसके अंतर्गत इज़राइल और फिलिस्तीन मुक्ति संगठन ने एक-दूसरे को आधिकारिक मान्यता देने तथा हिंसक गतिविधियों को त्यागने पर सहमति प्रकट की। ओस्लो समझौते के तहत एक फिलिस्तीनी प्राधिकरण की भी स्थापना की गई थी। हालाँकि इस प्राधिकरण को गाजा पट्टी और वेस्ट बैंक के भागों में सीमित स्वायत्तता ही प्राप्त हुई थी।
- इसके पश्चात् वर्ष 1995 में दूसरा ओस्लो समझौता किया गया जिसमें वेस्ट बैंक के 6 शहरों और लगभग 450 कस्बों से इज़राइली सैनिकों की पूर्ण वापसी का प्रावधान शामिल था।

इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष की पृष्ठभूमि

- इज़राइल और फिलिस्तीन के मध्य संघर्ष का इतिहास लगभग 100 वर्ष पुराना है, जिसकी शुरुआत वर्ष 1917 में उस समय हुई जब तत्कालीन ब्रिटिश विदेश सचिव आर्थर जेम्स बल्फौर ने 'बल्फौर घोषणा' (Balfour Declaration) के तहत फिलिस्तीन में एक यहूदी 'राष्ट्रीय घर' (National Home) के निर्माण के लिये ब्रिटेन का आधिकारिक समर्थन व्यक्त किया।
- अरब और यहूदियों के बीच संघर्ष को समाप्त करने में असफल रहे ब्रिटेन ने वर्ष 1948 में फिलिस्तीन से अपने सुरक्षा बलों को हटा लिया और अरब तथा यहूदियों के दावों का समाधान करने के लिये इस मुद्दे को नवनिर्मित संगठन संयुक्त राष्ट्र (UN) के विचारार्थ प्रस्तुत किया।
- संयुक्त राष्ट्र ने फिलिस्तीन में स्वतंत्र यहूदी और अरब राज्यों की स्थापना करने के लिये एक विभाजन योजना (Partition Plan) प्रस्तुत की जिसे फिलिस्तीन में रह रहे अधिकांश यहूदियों ने स्वीकार कर लिया किंतु अरबों ने इस पर अपनी सहमति प्रकट नहीं की।

- वर्ष 1948 में यहूदियों ने स्वतंत्र इज़राइल की घोषणा कर दी और इज़राइल एक देश बन गया, इसके परिणामस्वरूप आस-पास के अरब राज्यों (इजिप्ट, जॉर्डन, इराक और सीरिया) ने इज़राइल पर आक्रमण कर दिया। युद्ध के अंत में इज़राइल ने संयुक्त राष्ट्र की विभाजन योजना के आदेशानुसार प्राप्त भूमि से भी अधिक भूमि पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया।
- इसके पश्चात् दोनों देशों के मध्य संघर्ष तेज़ होने लगा और वर्ष 1967 में प्रसिद्ध 'सिक्स डे वॉर' (Six-Day War) हुआ, जिसमें इज़राइली सेना ने गोलन हाइट्स, वेस्ट बैंक तथा पूर्वी येरुशलम को भी अपने अधिकार क्षेत्र में कर लिया।
- वर्ष 1987 में मुस्लिम भाईचारे की मांग हेतु फिलिस्तीन में 'हमास' नाम से एक हिंसक संगठन का गठन किया गया। इसका गठन हिंसक जिहाद के माध्यम से फिलिस्तीन के प्रत्येक भाग पर मुस्लिम धर्म का विस्तार करने के उद्देश्य से किया गया था।
- समय के साथ वेस्ट बैंक और गाजा पट्टी के अधिगृहीत क्षेत्रों में तनाव व्याप्त हो गया जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 1987 में प्रथम इंतिफादा (Intifida) अथवा फिलिस्तीन विद्रोह हुआ, जो कि फिलिस्तीनी सैनिकों और इज़राइली सेना के मध्य एक छोटे युद्ध में परिवर्तित हो गया।

दोनों देशों के बीच विवाद

- वेस्ट बैंक

वेस्ट बैंक इज़राइल और जॉर्डन के मध्य अवस्थित है। इसका एक सबसे बड़ा शहर 'रामल्लाह' (Ramallah) है, जो कि फिलिस्तीन की वास्तविक प्रशासनिक राजधानी है। इज़राइल ने वर्ष 1967 के युद्ध में इस पर अपना नियंत्रण स्थापित किया।

- गाजा पट्टी

गाजा पट्टी इज़राइल और मिस्र के मध्य स्थित है। इज़राइल ने वर्ष 1967 में गाजा पट्टी का अधिग्रहण किया था, किंतु गाजा शहर के अधिकांश क्षेत्रों के नियंत्रण तथा इनके प्रतिदिन के प्रशासन पर नियंत्रण का निर्णय ओस्लो समझौते के दौरान किया गया था। वर्ष 2005 में इज़राइल ने इस क्षेत्र से यहूदी बस्तियों को हटा दिया यद्यपि वह अभी भी इस क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय पहुँच को नियंत्रित करता है।

- गोलन हाइट्स

गोलन हाइट्स एक सामरिक पठार है जिसे इज़राइल ने वर्ष 1967 के युद्ध में सीरिया से छीन लिया था। ज्ञात हो कि हाल ही में अमेरिका ने आधिकारिक तौर पर येरुशलम और गोलान हाइट्स को इज़राइल का एक हिस्सा माना है।

येरुशलम- विवादित अतीत पर बसा शहर

येरुशलम यहूदियों, मुस्लिमों और ईसाइयों की समान आस्था का केंद्र है। यहाँ ईसाईयों के लिये पवित्र सेपुलकर चर्च, मुस्लिमों की पवित्र मस्जिद और यहूदियों की पवित्र दीवार पवित्र दीवार स्थित है।

होली चर्च

येरुशलम में पवित्र सेपुलकर चर्च है, जो दुनिया भर के ईसाइयों के लिये विशिष्ट स्थान है। ईसाई मतावलंबी मानते हैं कि ईसा मसीह को यहीं सूली पर लटकाया गया था और यही वह स्थान भी है जहाँ ईसा फिर जीवित हुए थे। यह दुनिया भर के लाखों ईसाइयों का मुख्य तीर्थस्थल है, जो ईसा के खाली मकबरे की यात्रा करते हैं। इस चर्च का प्रबंध संयुक्त तौर पर ईसाइयों के अलग-अलग संप्रदाय करते हैं।

पवित्र मस्जिद

येरुशलम में ही पवित्र गुंबदाकार 'डोम ऑफ रॉक' यानी कुव्वतुल सखरह और अल-अक्सा मस्जिद है। यह एक पठार पर स्थित है जिसे मुस्लिम 'हरम अल शरीफ' या पवित्र स्थान कहते हैं। यह मस्जिद इस्लाम की तीसरी सबसे पवित्र जगह है, इसकी देखरेख और प्रशासन का ज़िम्मा एक इस्लामिक ट्रस्ट करता है, जिसे वक्फ भी कहा जाता है। मुसलमान मानते हैं कि पैगंबर अपनी यात्रा में मक्का से यहीं आए थे और उन्होंने आत्मिक तौर पर सभी पैगंबरों से दुआ की थी। कुव्वतुल सखरह से कुछ ही दूरी पर एक आधारशिला रखी गई है जिसके बारे में मुसलमान मानते हैं कि मोहम्मद यहीं से स्वर्ग की ओर गए थे।

पवित्र दीवार

येरुशलम का कोटेल या पश्चिमी दीवार का हिस्सा यहूदी बहुल माना जाता है क्योंकि यहाँ कभी उनका पवित्र मंदिर था और यह दीवार उसी की बची हुई निशानी है। यहाँ मंदिर के अंदर यहूदियों की सबसे पवित्रतम जगह 'होली ऑफ होलीज़' है। यहूदी मानते हैं यहीं पर सबसे पहले उस शिला की नींव रखी गई थी, जिस पर दुनिया का निर्माण हुआ और जहाँ अब्राहम ने अपने बेटे इसाक की कुरबानी दी थी। पश्चिमी दीवार, 'होली ऑफ होलीज़' की वह सबसे करीबी जगह है, जहाँ से यहूदी प्रार्थना कर सकते हैं। इसका प्रबंध पश्चिमी दीवार के रब्बी करते हैं।

फिलिस्तीन की मांग

- फिलिस्तीन की मांग है कि इज़राइल वर्ष 1967 से पूर्व की अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित हो जाए और वेस्ट बैंक तथा गाजा पट्टी में स्वतंत्र फिलिस्तीन राज्य की स्थापना करे। साथ ही इज़राइल को किसी भी प्रकार की शांति वार्ता में शामिल होने से पूर्व अपने अवैध विस्तार को रोकना होगा।
- फिलिस्तीन चाहता है कि वर्ष 1948 में अपना घर खो चुके फिलिस्तीन के शरणार्थी वापस फिलिस्तीन आ सकें।
- फिलिस्तीन पूर्वी येरुशलम को स्वतंत्र फिलिस्तीन राष्ट्र की राजधानी बनाना चाहता है।

इज़राइल की मांग

- इज़राइल येरुशलम को अपना अभिन्न अंग मानता है और इसीलिये येरुशलम पर अपनी संप्रभुता चाहता है।
- इज़राइल की मांग है कि संपूर्ण विश्व इज़राइल को एक यहूदी राष्ट्र के रूप में मान्यता दे। ज्ञात हो कि इज़राइल दुनिया का एकमात्र ऐसा देश है जो धार्मिक समुदाय के लिये बनाया गया है।

इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष और अमेरिका

- विदित है कि अमेरिका इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष में मध्यस्थ के रूप में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। हालाँकि एक मध्यस्थ के रूप में अमेरिका की भूमिका को फिलिस्तीन ने सदैव संदेह की दृष्टि से देखा है। इस संदर्भ में कई मौकों पर इस्लामिक सहयोग संगठन (OIC) और अरब संगठनों द्वारा अमेरिका की आलोचना की गई है।
    - अमेरिका में इज़राइल की तुलना में अधिक यहूदी रहते हैं, जिसके कारण अमेरिका की राजनीति पर उनका काफी प्रभाव है।
- ओबामा प्रशासन के दूसरे कार्यकाल में अमेरिका-इज़राइल संबंधों में गिरावट देखी गई थी। वर्ष 2015 के परमाणु समझौते ने इज़राइल को खासा चिंतित किया था और इसके लिये इज़राइल ने अमेरिका की आलोचना भी की थी।
- हालाँकि अमेरिका के मौजूदा प्रशासन के तहत अमेरिका-इज़राइल संबंधों का काफी तेज़ी से विकास हुआ है। ज्ञात हो कि कुछ वर्षों पूर्व ही अमेरिका ने येरुशलम को इज़राइल की आधिकारिक राजधानी की मान्यता दे दी थी, जिसका अरब जगत के कई नेताओं ने विरोध किया था।

इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष और भारत

- भारत ने आज़ादी के पश्चात् लंबे समय तक इज़राइल के साथ कूटनीतिक संबंध नहीं रखे, जिससे यह स्पष्ट था कि भारत फिलिस्तीन की मांगों का समर्थन करता है, किंतु वर्ष 1992 में इज़राइल से भारत के औपचारिक कूटनीतिक संबंध बने और अब यह रणनीतिक संबंध में परिवर्तित हो गए हैं तथा अपने उच्च स्तर पर हैं।
- दूसरी ओर, भारत-फिलिस्तीन संबंध प्रारंभ से ही काफी घनिष्ठ रहे हैं तथा भारत फिलिस्तीन की समस्याओं के प्रति काफी संवेदनशील रहा है। फिलिस्तीन मुद्दे के साथ भारत की सहानुभूति और फिलिस्तीनियों के साथ मित्रता बनी रहे, यह सदैव ही भारतीय विदेश नीति का अभिन्न अंग रहा है।
    - ज्ञात हो कि वर्ष 1947 में भारत ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में फिलिस्तीन के विभाजन के विरुद्ध मतदान किया था।
- भारत पहला गैर-अरब देश था, जिसने वर्ष 1974 में फिलिस्तीनी जनता के एकमात्र और कानूनी प्रतिनिधि के रूप में फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन को मान्यता प्रदान की थी। साथ ही भारत वर्ष 1988 में फिलिस्तीनी राज्य को मान्यता देने वाले शुरुआती देशों में शामिल था।
- भारत ने फिलिस्तीन से संबंधित कई प्रस्तावों का समर्थन किया है, जिनमें सितंबर 2015 में सदस्य राज्यों के ध्वज की तरह अन्य प्रेक्षक राज्यों के साथ संयुक्त राष्ट्र परिसर में फिलिस्तीनी ध्वज लगाने का भारत का समर्थन प्रमुख है।
- फिलिस्तीन का समर्थन करने के अलावा भारत ने इज़राइल का भी काफी समर्थन किया है और दोनों देशों के साथ अपनी संतुलित नीति बरकरार रखी है।

निष्कर्ष

- शांतिपूर्ण समाधान के लिये वैश्विक समाज को एक साथ आने की ज़रूरत है किंतु इस मुद्दे से संबंधित विभिन्न हितधारकों की अनिच्छा ने इसे और अधिक जटिल बना दिया है। आवश्यक है कि सभी हितधारक एक मंच पर उपस्थित होकर समस्या का समाधान खोजने का प्रयास करें।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

वैज्ञानिक क्रांति का दशक

संदर्भ

लगभग 3500 ई.पू. में पहिये के साथ शुरू हुआ वैज्ञानिक आविष्कार का सफर आज तक अनवरत जारी है। इस दौरान दुनिया भर में तमाम तरह के आविष्कार किये जा रहे हैं जिन्होंने हमारे जीवन के सूक्ष्मतम पहलुओं को बदलने में अपना योगदान दिया है। 20वीं सदी में इंटरनेट के आविष्कार ने कंप्यूटर क्रांति के मार्ग को एक नई दिशा दी और लगभग संपूर्ण विश्व को एक कमरे में समेट दिया। पिछले एक दशक में विज्ञान की दुनिया काफी बदल गई है, इस अवधि के दौरान हुए वैज्ञानिक और तकनीकी नवाचार ने मानवीय जीवन को बेहद प्रभावित किया है। ऐसे में यह आवश्यक है कि हम बीते 10 वर्षों में वैज्ञानिक विकास के बदलते स्वरूप को समझने का प्रयास करें।

स्मार्ट फोन क्रांति

- पिछला एक दशक स्मार्ट फोन की क्रांति के नज़रिये से काफी अहम् रहा है। इस अवधि में हम फीचर फोन से टच स्क्रीन फोन तक पहुँच गए हैं। इसी के साथ ही मोबाइल फोन की कीमतों में भी काफी कमी देखने को मिला है।
  - फोन की कीमतों में कमी से इसकी मांग बढ़ गई है और आज यह दुनिया भर के आम जनमानस तक पहुँच गया है।
- वर्ष 2010 के मुकाबले वर्ष 2020 के मोबाइल फोन्स में मौजूद फीचर्स ने हमारे दैनिक जीवन पर भी काफी प्रभाव डाला है। आज हमारा दैनिक जीवन मोबाइल फोन के चारों ओर ही घूम रहा है।

3G से 5G की ओर

- 1990 के दशक के अंत में इंटरनेट क्रांति ने मोबाइल इंटरनेट की मांग को काफी बढ़ा दिया। 2G नेटवर्क की अभूतपूर्व सफलता ने अधिक तेज़ तथा कुशल मोबाइल नेटवर्क के निर्माण हेतु एक एक प्रेरणा का कार्य किया, जिसके पश्चात् 3G नेटवर्क पर खोज प्रारंभ हुई और 2010 के दशक की शुरुआत के साथ ही 3G नेटवर्क आम लोगों के बीच प्रचलित हो गया।
- अब नए दशक की शुरुआत के साथ ही हम 5G नेटवर्क की ओर बढ़ गए हैं जिसने लोगों को इंटरनेट के प्रयोग का बेहतरीन अनुभव प्रदान किया।
- इस अवधि में इंटरनेट डेटा का प्रयोग भी काफी तेज़ी से बढ़ा है। एसोचैम (ASSOCHAM) की रिपोर्ट के मुताबिक भारत का डेटा उपभोग वर्ष 2022 में 72.6 प्रतिशत बढ़कर 10,96,58,793 मिलियन MB हो जाएगा। यदि भारत में 5G आता है तो डेटा की यह खपत और अधिक बढ़ सकती है।

मंगल ग्रह पर जीवन की संभावना

- नासा (NASA) के क्यूरियोसिटी रोवर (Curiosity Rover) यान ने 6 अगस्त, 2012 को मंगल ग्रह पर उतरने के कुछ समय बाद ही गोल आकार के पत्थरों (Rounded Pebbles) की खोज की, जो यह दर्शाता है कि लगभग तीन बिलियन वर्ष पहले इस ग्रह पर नदियाँ विद्यमान थीं।
- वर्ष 2019 में नासा के क्यूरियोसिटी रोवर यान द्वारा मंगल ग्रह की वायु में मीथेन की उच्च मात्रा संबंधी डेटा भेजा गया है। पृथ्वी पर यह गैस सामान्यत: जीवित जीवों द्वारा उत्सर्जित होती है। वैज्ञानिक इसे मंगल ग्रह पर सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति का संकेत मान रहे हैं।
- वर्ष 2014 में क्यूरियोसिटी रोवर यान ने जीवन के आधारभूत तत्त्व जटिल कार्बनिक अणुओं की खोज की।
- वर्ष 2020 में अमेरिका द्वारा 'मार्स, 2020' (Mars, 2020) और यूरोप द्वारा 'रोजालिंड फ्रैंकलिन रोवर्स' (Rosalind Franklin Rovers) यानों को मंगल ग्रह पर सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति की खोज के लिये लॉन्च किया जाएगा।

गुरुत्वाकर्षण तरंगें

- लगभग 100 वर्ष पहले सर्वप्रथम महान वैज्ञानिक 'अल्बर्ट आइंस्टीन' द्वारा सापेक्षिकता के सिद्धांत (Theory of Relativity) में गुरुत्वाकर्षण तरंगों की भविष्यवाणी की गई थी। इस भविष्यवाणी के संदर्भ में तकरीबन 50 वर्षों तक शोध कार्य किये जाने के बाद 14 सितंबर, 2015 को पहली बार इन तरंगों को खोजा जा सका।
- लगभग 1.3 बिलियन वर्ष पूर्व ब्रह्माण्ड में दो ब्लैकहोल (Blackholes) की शक्तिशाली टक्कर के कारण पूरे ब्रह्माण्ड में सागरीय लहरों की तरह वलन उत्पन्न करते हुए प्रकाश की गति से चलने वाली कुछ तरंगें उत्पन्न हुईं। इन्हीं तरंगों को गुरुत्त्वाकर्षण तरंगें कहा जाता है।
- वर्ष 2017 का भौतिकी का नोबेल पुरस्कार गुरुत्वीय तरंगों की खोज करने वाले वैज्ञानिकों रैनर वीस (Rainer Weiss), बैरी सी. बैरिश (Barry C. Barish) एवं किप एस. थॉर्न (Kip S. Thorne) को संयुक्त रूप से प्रदान किया गया था और तब से कई प्रकार के गुरुत्त्वाकर्षण तरंगों का पता लग चुका है।
- वर्ष 2009 में नासा द्वारा लॉन्च किये गए कैपलर मिशन ने हमारे सौरमंडल के बाहर अब तक 2600 से अधिक ग्रहों की खोज की है। ऐसे ग्रहों को एक्सोप्लैनेट (Exoplanets) कहते हैं।
- नासा द्वारा हमारे सौरमंडल से बाहर के जीवन का पता लगाने के लिये वर्ष 2018 में कैपलर के उत्तरवर्ती (Successor) मिशन 'टेस' (The Transiting Exoplanet Survey Satellite-TESS) लॉन्च किया गया था।

चालक रहित कार

- 2010 के दशक में दुनिया भर की कई बड़ी कंपनियों ने बिना ड्राइवर के वाली कार के प्रयोग में सफलता हासिल की है जिसमें टेस्ला और गूगल जैसी कंपनियों का नाम सबसे आगे है।
- इंटरनेट के माध्यम से गूगल मैप और कृत्रिम बुद्धमत्ता (AI) का प्रयोग कर इस प्रकार की गाड़ियाँ लोगों को बिना जोखिम के अपनी मंज़िल तक पहुँचती हैं।
- हालाँकि विश्लेषक मानते हैं कि चालक रहित गाड़ियों की परियोजना को पूरी तरह सफलता हासिल करने में अभी थोड़ा समय लेगा और विशेष भौगोलिक क्षेत्रों जैसे भारत आदि, जहाँ स्वाचालित तकनीक का प्रचलन काफी कम है, में लंबा वक्त लग सकता है।
- इसके अलावा ड्राइवर रहित करों को लेकर डेटा सुरक्षा भी एक बड़ा मुद्दा है।

ड्रोन का प्रयोग

- विश्व में ड्रोन का इतिहास काफी पुराना है, परंतु इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण घटना वर्ष 2010 में हुई जब एक फ्रेंच कंपनी ने पहला रेडी-टू-फ्लाई (Ready-to-Fly) ड्रोन जिसे स्मार्टफोन का उपयोग कर वाई-फाई (Wi-Fi) के माध्यम से नियंत्रित किया जा सकता था।
- वर्ष 2014 में अमेज़न (Amazon) ने ड्रोन के माध्यम से डिलीवरी करने का विचार प्रस्तुत किया। साथ ही इसी समय कई कंस्ट्रक्शन कंपनियां भी अपने प्रमोशन के लिये ड्रोन का प्रयोग करने लगी थीं।
- एयर टैक्सी की अवधारणा को ड्रोन के विकास का दूसरा चरण माना जा रहा है, इसके माध्यम से लोगों को ट्रैफिक जाम की समस्या से छुटकारा मिल सकेगा।
- मौजूदा समय में भारत के बंगलुरू में एयर टैक्सी की सुविधा उपलब्ध है। भारत में ड्रोन के बढ़ते प्रयोग को देखते हुए सरकार ने नीति भी तैयार की है।

मानव परिवार के विभिन्न पूर्वजों की खोज

- 2010 के दशक की शुरुआत ही 'डेनिसोवंस' (Denisovans) नामक मानव परिवार की एक विलुप्त प्रजाति की खोज के साथ हुई थी। इस प्रजाति की खोज साइबेरिया के अल्टाइ (Altai) पर्वत में 'डेनिसोवा' (Denisova) गुफा में खोज के कारण इसका नाम 'डेनिसोवंस' रखा गया था।
- इसके बाद वर्ष 2015 में 'होमो नालेडी' (Homo Naledi) नामक मानव प्रजाति के अवशेष दक्षिण अफ्रीका में खोजे गए।
- जबकि वर्ष 2019 में जीवाश्म विज्ञानियों (Paleontologists) ने फिलीपींस में पाई जाने वाली एक और प्रजाति को होमो लूज़ोनेंसिस (Homo Luzonensis) नामक एक छोटे आकार की मानव प्रजाति के रूप में वर्गीकृत किया था।

नोट :

कृत्रिम बुद्धमत्ता (AI)

- गूगल, माइक्रोसॉफ्ट जैसी कंपनियां कृत्रिम बुद्धमत्ता (AI) आधारित ऑपरेटिंग सिस्टम के लिये कार्य कर रही हैं। AI की सहायता से हमारे जीवन में रोबोटिक्स का प्रयोग दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा है।
- कृत्रिम बुद्धिमत्ता वह गतिविधि है जिसके द्वारा मशीनों को बुद्धिमान बनाने का काम किया जाता है और बुद्धिमत्ता वह गुण है जो किसी इकाई को अपने वातावरण में उचित दूरदर्शिता के साथ कार्य करने में सक्षम बनाता है।
- 2010 का दशक 'मशीन लर्निंग' (Machine Learning) के आरंभ का दशक रहा है।

निष्कर्ष

बीता दशक वैज्ञानिक आविष्कारों की दृष्टि से एक क्रांतिकारी युग रहा है। इस दौरान ऐसे तमाम आविष्कार हुए जिन्होंने आम जनमानस के सोचने, समझने और निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित किया है। हालाँकि तकनीक जो हमारी रोज़मर्रा की जिंदगी में काफी फायदेमंद होती है वह मानव सभ्यता को प्रतिकूल रूप से भी प्रभावित कर सकती है। उम्मीद है कि आने वाले वर्षों में भी तकनीक इसी तरह मानवीय जीवन को और सुगम बनाने में अपना योगदान देगी।

स्वास्थ्य आपातकाल- पोलियो

संदर्भ

पोलियो वायरस के अंतर्राष्ट्रीय प्रसार के जोखिम को देखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने इसे आगामी 3 महीनों के लिये अंतर्राष्ट्रीय चिंता संबंधी सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल (Public Health Emergency of International Concern-PHEIC) के रूप में बरकरार रखने की घोषणा की है। पोलियो वायरस को लेकर यह निर्णय WHO द्वारा आपातकालीन समिति की सिफारिशों के आधार पर लिया गया है, जिसने बीते महीने विश्व भर में पोलियो के प्रसार का विश्लेषण किया था।

आपातकालीन समिति की बैठक

- पोलियो वायरस के प्रसार को देखते हुए समिति ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया था कि इसका खतरा अंतर्राष्ट्रीय चिंता का विषय है। साथ ही आगामी 3 महीनों के लिये पोलियो को PHEIC के रूप में बरकरार रखने की भी सिफारिश की थी।
- समिति के अनुसार, यह निर्णय टाइप-1 वाइल्ड पोलियो वायरस के अंतर्राष्ट्रीय प्रसार के 'बढ़ते जोखिम' के आधार पर सर्वसम्मति से लिया गया है।
- ज्ञात हो कि पोलियो को वर्ष 2014 में PHEIC के रूप में घोषित किया गया था और तब से यह उसी रूप में बना हुआ है। पोलियो का इतनी लंबी अवधि तक PHEIC के रूप में बने रहने पर भी समिति ने अपनी चिंताएँ ज़ाहिर की थीं।

पोलियो (पोलियोमाइलिटिस)- एक संक्रामक रोग

- 'पोलियो' या पोलियोमाइलिटिस एक संक्रामक वायरल रोग है जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है और अस्थायी या स्थायी पक्षाघात कर सकता है।
  - ज्ञातव्य है कि पोलियोमाइलिटिस एक ग्रीक शब्द पोलियो से आया है जिसका अर्थ है 'भूरा', माइलियोस का अर्थ है मेरु रज्जु और आइटिस का अर्थ है प्रज्वलन।
- यह रोग मुख्यत: एक से पाँच वर्ष की आयु के बच्चों को ही प्रभावित करता है, क्योंकि उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता पूरी तरह विकसित नहीं हुई होती है।
- विदित हो कि पोलियो का पहला टीका जोनास सॉल्क द्वारा विकसित किया गया था।
- यह भारत के लिये एक बड़ी उपलब्धि है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने दक्षिण-पूर्व एशिया सहित भारत को वर्ष 2014 में पोलियो-मुक्त घोषित कर दिया था।
- पोलियो-मुक्त होने के बावजूद भारतीय नीति-निर्माता अब भी पोलियो को लेकर काफी सचेत हैं, क्योंकि पोलियो वायरस के भारत में वापस आने का खतरा है।

वैश्विक स्तर पर क्या है स्थिति ?

- आँकड़ों के मुताबिक, जहाँ एक ओर वर्ष 2018 में विश्व भर में वाइल्ड पोलियो टाइप-1 के 28 मामले सामने आए वहीं 2019 में इसके 156 मामले दर्ज किये गए।
- वर्ष 2019 में वाइल्ड पोलियो टाइप-1 के सबसे अधिक मामले पाकिस्तान (128) में दर्ज किये गए, जबकि भारत का ही एक अन्य पड़ोसी देश अफगानिस्तान (28) इस सूची में दूसरे स्थान पर रहा।
- आँकड़ों से स्पष्ट है कि पाकिस्तान और अफगानिस्तान में इस रोग की स्थिति काफी भयानक है और उन्हें इस संदर्भ में जल्द-से-जल्द कोई गंभीर कदम उठाने की आवश्यकता है। भारत के दो पड़ोसी देशों में पोलियो की इस स्थिति को देखते हुए इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इसका सीधा प्रभाव भारत पर भी देखने को मिलेगा।
- छोटे बच्चों को प्रभावित करने के अलावा यह वायरस पाकिस्तान के वातावरण में भी फैल रहा है और कुछ ऐसी ही स्थिति अफगानिस्तान में भी बनती दिख रही है।
- वाइल्ड पोलियो टाइप-1 के अलावा टीका-व्युत्पन्न पोलियो वायरस (VDPV) भी एक बड़ी समस्या बना हुआ है। वर्ष 2019 में VDPV से संबंधित कुल 249 मामले दर्ज किये गए थे।
- WHO की आपातकालीन समिति का कहना है कि "टीका-व्युत्पन्न पोलियो वायरस (VDPV) का तेज़ी से प्रसार एक गंभीर समस्या है और इसे अब तक पूर्णत: समझा नहीं जा सका है।"
- विदित हो कि अफगानिस्तान से वैक्सीन व्युत्पन्न पोलियो वायरस (VDPV) का एक भी मामला सामने नहीं आया, जबकि पाकिस्तान में इसके मात्र 12 मामले दर्ज किये गए। वहीं दूसरी ओर अंगोला (Angola) और कांगो में VDPV के मामलों की संख्या क्रमश: 86 और 63 थी।
- एक ओर नाइज़ीरिया में VDPV के 18 मामले दर्ज किये गए, जबकि वहाँ वाइल्ड पोलियो टाइप-1 का एक भी मामला दर्ज नहीं हुआ।

पोलियो मुक्त है भारत

- यदि किसी देश में लगातार तीन वर्षो तक एक भी पोलियो का मामला नहीं आता, तो विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) उसे 'पोलियो मुक्त देश' घोषित कर देता है। भारत में पोलियो का अंतिम मामला 13 जनवरी, 2011 को पश्चिम बंगाल में दर्ज किया गया था। जिसके पश्चात् लगातार नजर रखी गयी और अगले तीन वर्षों में कोई मामला सामने नहीं आया।
- इसे देखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने भारत को वर्ष 2014 में 'पोलियो मुक्त देश' घोषित कर दिया।
- भले ही भारत को पोलियो मुक्त घोषित कर दिया गया है, परंतु भारत के पड़ोसी देशों में अभी भी यह एक गंभीर समस्या बनी हुई है। जिसका स्पष्ट प्रभाव भारत पर देखने को मिल सकता है।

कैसे संभव हुआ भारत में यह

- विभिन्न गंभीर समस्याओं से घिरे होने के बावजूद भी भारत की भारत की स्वास्थ्य प्रणाली ने वर्ष 2014 में पोलियो के समग्र उन्मूलन के साथ ही एक नया मुकाम हासिल कर लिया था।
- वर्ष 1985 में भारत में पोलियो के करीब 1 लाख 50 हज़ार मामले सामने आये थे। वहीं वर्ष 2009 तक दुनिया भर में पोलियो के जितने मामले थे, उनमें से आधे भारत में ही थे।
- पोलियो उन्मूलन के सफर में भारत को तमाम तरह चुनौतियों का सामना करना पड़ा। जिनमें उच्च जनसंख्या घनत्व और जन्म दर, स्वच्छता की कमी, दुर्गम इलाके एवं आबादी के एक हिस्से विशेषत: मुस्लिम समुदाय की अनिच्छा जैसे कई मुद्दे शामिल थे।

आँकड़ों के अनुसार इस कार्य हेतु देश में करीब 33 हज़ार से अधिक निगरानी केंद्र बनाये गये और 23 लाख से ज़्यादा लोग पोलियो की खुराक पिलाने के लिये तैनात किये गये थे।

नोट :

भारत की 'सॉफ्ट पॉवर'

संदर्भ

जनसंचार, वैश्विक व्यापार और पर्यटन के मौजूदा दौर में 'सॉफ्ट पॉवर' की अवधारणा ने विश्व के विभिन्न देशों की विदेश नीति में विशिष्ट स्थान हासिल कर लिया है। अधिक-से-अधिक 'पॉवर' की तलाश में प्राचीन काल से ही युद्ध लड़े जा रहे हैं, किंतु समय के साथ 'पॉवर' के स्वरूप और मायने में परिवर्तन आया है। अब 'हार्ड पॉवर' के स्थान पर 'सॉफ्ट पॉवर' के प्रयोग को अधिक सहूलियत भरा माना जाता है। भारत अपनी बौद्धिक व सांस्कृतिक शक्ति अर्थात् 'सॉफ्ट पॉवर' का प्रयोग तब से कर रहा है, जब से राजनीतिक विशेषज्ञों ने इस अवधारणा का प्रतिपादन भी नहीं किया था। बीते कुछ समय में भारत ने अपनी 'सॉफ्ट पॉवर' के प्रयोग की रणनीति काफी व्यवस्थित की है और एक रणनीतिक उपकरण के रूप में इसका प्रयोग करने में सक्षम रहा है। ऐसे में 'सॉफ्ट पॉवर' का अध्ययन करते हुए यह जानना आवश्यक है कि इसने भारत की विदेश नीति को आकार देने में किस प्रकार की भूमिका निभाई है।

'सॉफ्ट पॉवर' की अवधारणा

- 'सॉफ्ट पॉवर' शब्द का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में किया जाता है जिसके तहत कोई राज्य परोक्ष रूप से सांस्कृतिक अथवा वैचारिक साधनों के माध्यम से किसी अन्य देश के व्यवहार अथवा हितों को प्रभावित करता है।
- इसमें आक्रामक नीतियों या मौद्रिक प्रभाव का उपयोग किये बिना अन्य राज्यों को प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है।
- 'सॉफ्ट पॉवर' की अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग अमेरिका के प्रसिद्ध राजनीतिक विशेषज्ञ जोसेफ न्ये (Juseph Nye) द्वारा किया गया था।
- जहाँ एक ओर पारंपरिक 'हार्ड पॉवर' राज्य के सैन्य और आर्थिक संसाधनों पर निर्भर करती है, वहीं 'सॉफ्ट पॉवर' अनुनय के आधार पर कार्य करती है, जिसका लक्ष्य देश के 'आकर्षण' को बढ़ाना होता है।
- 'सॉफ्ट पॉवर' ज़्यादातर अमूर्त चीजों जैसे- योग, बौद्ध धर्म, सिनेमा, संगीत, आध्यात्मिकता आदि पर आधारित होती है।
- 'सॉफ्ट पॉवर' की अवधारणा प्रस्तुत करने वाले जोसेफ न्ये के अनुसार, 'सॉफ्ट पॉवर' किसी भी देश के तीन प्रमुख संसाधनों- संस्कृति, राजनीतिक मूल्य और विदेश नीति पर निर्भर करती है।
- मौजूदा समय में अधिकांश देश 'सॉफ्ट पॉवर' और 'हार्ड पॉवर' के संयोजन का प्रयोग करते हैं, जिसे राजनीतिक विश्लेषकों ने 'स्मार्ट पॉवर' की संज्ञा दी है।
  - हाल के कुछ वर्षों में भारत ने भी 'स्मार्ट पॉवर' के प्रयोग पर बल दिया है, परंतु इसमें 'सॉफ्ट पॉवर' पर ही अधिक ध्यान दिया गया है।

'सॉफ्ट पॉवर' के उदाहरण

- चीन का 'बेल्ट एंड रोड' पहल एक 'सॉफ्ट पॉवर' के प्रयोग का सबसे अच्छा उदाहरण है, जिसका उद्देश्य विकास के नाम पर छोटे देशों को चीन पर निर्भर बनाना है ताकि वे चीन की नीतियों का समर्थन करें।
- विदेशों खासकर अमेरिका में रहने वाले भारतीयों ने एक सकारात्मक माहौल के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की जिसके कारण अमेरिका भारत के साथ परमाणु समझौते पर हस्ताक्षर करने को बाध्य हो गया।

'सॉफ्ट पॉवर' का महत्त्व

- अनुनय और आकर्षण का प्रयोग कर सॉफ्ट पॉवर प्रतिस्पर्द्धा या संघर्ष के बिना अन्य राष्ट्रों के व्यवहार में परिवर्तन को संभव बनाता है।
- सॉफ्ट पॉवर की नीति के अंतर्गत विभिन्न देशों के मध्य सहयोग को बढ़ावा दिया जाता है, जिससे यह संबंधों को मजबूत कर विकास में योगदान करती है जबकि हार्ड पॉवर नीति में एक तरफा कार्रवाई, सैन्य क्षमता को बढ़ाना जैसे कदमों के कारण यह अत्यधिक महँगी, कठिन एवं चुनौतिपूर्ण हो गई है।
- 'सॉफ्ट पॉवर' में व्यापक स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों को प्रभावित करने की क्षमता होती है।
- प्राचीन काल में भी कौटिल्य और कामंदक जैसे विद्वानों ने राज्य के मामलों में सफलता हासिल करने के लिये 'सॉफ्ट पॉवर' के प्रयोग की वकालत की थी।
- 'हार्ड पॉवर' की अपेक्षा 'सॉफ्ट पॉवर' नीति में संसाधनों का प्रयोग लागत प्रभावी तरीके से हो सकता है। डिजिटल क्रांति के वर्तमान युग में राज्यों के बीच संपर्क एवं सद्भाव का महत्त्व बढ़ता जा रहा है, इस परिप्रेक्ष्य में 'सॉफ्ट पॉवर' रणनीतियाँ ही उचित मानी जा रही हैं।

नोट :

'सॉफ्ट पॉवर' बनाम 'हार्ड पॉवर'

जहाँ एक ओर 'सॉफ्ट पॉवर' का अर्थ बिना संघर्ष या शक्ति प्रयोग के किसी के व्यवहार में परिवर्तन करने से है, जबकि 'हार्ड पॉवर' में सैन्य या आर्थिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए किसी के व्यवहार में परिवर्तन की वकालत की जाती है। 'सॉफ्ट पॉवर' की अवधारणा का महत्त्व शीत युद्ध (1945-1991) के पश्चात् काफी अधिक बढ़ गया, जबकि 'हार्ड पॉवर' का प्रयोग काफी लंबे समय से चलता आ रहा है। 'हार्ड पॉवर' मुख्यत: हथियारों और प्रतिबंधों पर निर्भर करती है, जबकि 'सॉफ्ट पॉवर' सांस्कृतिक गतिविधियों, अध्यात्म तथा योग जैसी अमूर्त चीज़ों पर निर्भर करती है।

भारत की 'सॉफ्ट पॉवर' कूटनीति

- भारत में 'सॉफ्ट पॉवर' प्राचीन काल से ही कूटनीति का एक प्रमुख उपकरण रहा है और इतिहास में हमें इसके प्रयोग के कई उदाहरण देखने को मिले हैं।
- भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का विश्वास था कि भारत वैश्विक मामलों में एक बढ़ती और लाभकारी भूमिका निभाने के लिये बाध्य है। उन्होंने एक ऐसी कूटनीति का विकास किया जो 'हार्ड पॉवर' के सैन्य और आर्थिक कारकों द्वारा समर्थित नहीं थी।
- इसका सबसे मुख्य कारण यही था कि उन्हें और संपूर्ण देश को गाँधी के अहिंसा के मार्ग पर गर्व था, जिसके माध्यम से हमने आज़ादी प्राप्त की थी।
- भारत के पूर्व प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल ने वर्ष 1996 में बतौर विदेश मंत्री 'गुजराल सिद्धांत' का प्रतिपादन किया था, जिसे भारत की विदेश नीति में 'सॉफ्ट पॉवर' का प्रमुख उदाहरण माना जाता है।
  - इस सिद्धांत के अनुसार, भारत को दक्षिण एशिया का सबसे बड़ा देश होने के नाते अन्य एशियाई देशों जैसे- मालदीव, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका और भूटान आदि के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाने होंगे।
- मौजूदा समय में भारत विदेशों में अपनी छवि को बढ़ाने के लिये अपने 'सॉफ्ट पॉवर' संसाधनों का उपयोग करने की दिशा में एक रणनीतिक दृष्टिकोण लेता दिख रहा है।
- आज बॉलीवुड, सूफी संगीत और योग जैसी तमाम चीज़े जो भारतीय संस्कृति का हिस्सा हैं, विश्व के विभिन्न देशों तक पहुँच गई हैं। भारत की आध्यात्मिकता, योग, दर्शन, धर्म आदि के साथ-साथ अहिंसा, लोकतांत्रिक विचारों आदि ने भी वैश्विक समुदाय को आकर्षित किया है।
- भारत की 'सॉफ्ट पॉवर' कूटनीति में शामिल हैं: आयुर्वेद, बौद्ध धर्म, क्रिकेट, भारतीय प्रवासी, बॉलीवुड, भारतीय भोजन, गांधीवादी आदर्श और योग आदि।

भारत की 'सॉफ्ट पॉवर' कूटनीति की चुनौतियाँ

- भारत में 30 से अधिक बिलियन-डॉलर के सफल स्टार्टअप हैं, किंतु इसके बावजूद भी देश में डिजिटल पहुँच काफी कम है और लाखों लोग बुनियादी डिजिटल प्रोद्योगिकी के जीवन व्यतीत कर रहे हैं।
- भारत में यूनेस्को के विश्व धरोहर स्थलों की संख्या काफी अधिक है, परंतु अभी भी देश का पर्यटन क्षेत्र कुछ खास विकास नहीं कर पाया है। यह स्थिति हमें अपनी पर्यटन नीति पर गंभीरता से विचार करने के लिये प्रेरित करती है।
- सांस्कृतिक विकास के लिये बुनियादी ढाँचे की कमी की समस्या भी देश की 'सॉफ्ट पॉवर' कूटनीति की एक बड़ी चुनौती है।
  - भारत सांस्कृतिक कूटनीति में निवेश की कमी, भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, शहरी क्षेत्रों में बुनियादी ढाँचे की कमी और गंभीर प्रदूषण जैसी समस्याओं का सामना कर रहा है।

'सॉफ्ट पॉवर' कूटनीति की दिशा में भारत के प्रयास

- बीते कुछ समय में सरकार ने विभिन्न देशों में मौजूद भारतीय प्रवासियों से जुड़ने के लिये कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं।
- यह भारत के लिये गर्व की बात है कि दुनिया की शीर्ष तीन सबसे बड़ी कंपनियों के CEO भारतीय मूल के हैं।
- साथ ही सरकार वैश्विक पटल पर योग को भारतीय विरासत के रूप में प्रस्तुत करने में सफल रही है। ज्ञात हो कि हाल ही में संयुक्त राष्ट्र (UN) ने भारत सरकार के आग्रह पर 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मान्यता दी है।
- बौद्ध धर्म पूर्वी एशियाई और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के साथ जुड़ने के लिये एक महत्त्वपूर्ण कड़ी रहा है। देश में बौद्ध धर्म से संबंधित पर्यटन को बढ़ावा देने के लिये सरकार ने वर्ष 2014 में बौद्ध सर्किट के विकास की भी घोषणा की थी।

- रूस और अन्य पड़ोसियों के लिये लाइन ऑफ क्रेडिट (LOC) की व्यवस्था ने भारत की सहयोगी देशों के साथ अपने गठबंधन को मज़बूत करने में मदद की है।

आगे की राह

बढ़ती बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में भारत को खुद को स्थापित करने की आवश्यकता है। चूँकि 'हार्ड पॉवर' न तो भारत के नज़रिये से सही है और न ही उसे एक सीमा से अधिक उपयोग नहीं किया जा सकता है, इसलिये 'सॉफ्ट पॉवर' ही भारत को वैश्विक पटल पर अपना स्थान हासिल करने में मदद कर सकती है। अत: आवश्यक है कि भारत अपनी विदेश नीति में 'सॉफ्ट पॉवर' को उचित स्थान दे और और 'स्मार्ट पॉवर' का प्रयोग करते हुए वैश्विक जगत में अपनी एक नई पहचान स्थापित करे।

फ्रंटियर प्रौद्योगिकी

संदर्भ

औद्योगिक क्रांति के साथ शुरू हुए तकनीकी परिवर्तन के दौर ने न केवल विश्व की अर्थव्यवस्था को एक नया स्वरूप दिया है बल्कि दक्षता और वैश्वीकरण की गति को तीव्र कर मानव समाज को परिवर्तित करने में भी अपनी भागीदारी सुनिश्चित की है। मौजूदा दौर औद्योगिक क्रांति के चौथे चरण का दौर है जिसे फ्रंटियर प्रौद्योगिकी का दौर भी कहा जा रहा है, तकनीकी परिवर्तन की नवीनतम लहर ने वस्तुओं, सेवाओं और विचारों के आदान-प्रदान के मौलिक स्वरूप को पूर्णत: परिवर्तित कर दिया है। हालाँकि बदलती तकनीक की विध्वंशक प्रकृति कोई नई बात नहीं है, यह वैश्विक समाज के सम्मुख नए अवसर प्रस्तुत करने के साथ-साथ नीति निर्धारण के लिये नई चुनौतियाँ उत्पन्न कर रही है। इन अवसरों का लाभ उठाने और चुनौतियों से निपटने के लिये फ्रंटियर प्रौद्योगिकी हेतु शासन के सभी स्तरों (राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और वैश्विक) पर नीतिगत सहयोग की आवश्यकता है।

फ्रंटियर प्रौद्योगिकी का अर्थ

- वर्ष 2015 में जब दुनिया ने वर्ष 2030 तक सतत् विकास लक्ष्यों की प्राप्त के लिये समझौता किया तब इन लक्ष्यों को प्राप्त के लिये तकनीक को एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में मान्यता दी गई। वास्तव में कई नवाचार जैसे- न्यूमोकोकल वैक्सीन, माइक्रोफाइनेंस और ग्रीन प्रौद्योगिकी आदि पिछले कुछ दशकों में काफी तेज़ी से हुए हैं, जिससे अकुशल स्वास्थ्य प्रणाली, आर्थिक असमानता और जलवायु परिवर्तन जैसे मुद्दों को संबोधित करने में मदद मिली है। मोबाइल फोन और इंटरनेट जैसी डिजिटल तकनीकों ने एक ऐसे युग का निर्माण किया है जहाँ विचार, ज्ञान और सूचना आदि पहले से कहीं अधिक स्वतंत्र रूप से प्रवाहित होते हैं।
- फ्रंटियर प्रौद्योगिकी आधुनिक प्रौद्योगिकी के विकास का अगला चरण है। फ्रंटियर प्रौद्योगिकी को मुख्यत: ऐसी प्रौद्योगिकियों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो व्यापक स्तर पर चुनौतियों या अवसरों को संबोधित कर सकती हैं।
  - कृत्रिम बुद्धिमत्ता, रोबोटिक्स, 3D प्रिंटिंग और इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) इत्यादि को फ्रंटियर प्रौद्योगिकी में शामिल किया जाता है।

फ्रंटियर प्रौद्योगिकी का प्रयोग

- फ्रंटियर प्रौद्योगिकी ने कृषि, विनिर्माण, अनौपचारिक एवं औपचारिक क्षेत्रों को जोड़ने और घरेलू इंटरकनेक्टिविटी के माध्यम से समृद्धि के नए मार्ग खोले हैं। इसके माध्यम से सरकारी प्रशासन एवं सार्वजनिक सेवाओं के वितरण में महत्त्वपूर्ण सुधार किया जा सकता है।
- फ्रंटियर प्रौद्योगिकी, अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियों के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के खतरों एवं वायु प्रदूषण के प्रभावों का पूर्वानुमान लगाने तथा इनसे निपटने में मददगार साबित हो सकती है।
- उदाहरण के लिये दक्षिण कोरिया में यातायात प्रदूषण को कम करने, ऊर्जा एवं जल की बचत करने तथा एक स्वच्छ वातावरण बनाने के लिये इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) के माध्यम से सोंगदो (Songdo) स्मार्ट सिटी बनाई गई है।
- यदि वैश्विक समाज को वर्ष 2030 तक सतत् विकास लक्ष्यों को प्राप्त करना है तो आवश्यक है कि ये अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियाँ समाज एवं पर्यावरण के साथ-साथ अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में भी काम करें ताकि विश्व के सभी देश आर्थिक विकास के अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें।

संबंधित चुनौतियाँ

- डिजिटल विभाजन में वृद्धि:
  - चूँकि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी इन्फ्रास्ट्रक्चर कई फ्रंटियर प्रौद्योगिकियों के लिये अतिमहत्त्वपूर्ण है और विश्व के कई देश इस प्रकार के इन्फ्रास्ट्रक्चर की भारी कमी का सामना कर रहे हैं। अत: इससे एक नए फ्रंटियर प्रौद्योगिकी विभाजन का जोखिम उत्पन्न होता है जो पहले से मौजूद डिजिटल विभाजन के साथ जुड़कर और अधिक व्यापक हो सकता है।
  - एक अनुमान के मुताबिक, वर्ष 2023 तक संभवत: 3 बिलियन लोग इंटरनेट के उपयोग से वंचित होंगे और इससे भी अधिक लोगों के पास डिजिटल प्रौद्योगिकी का लाभ प्राप्त करने का बहुत कम अवसर होगा।
  - प्रौद्योगिकी इन्फ्रास्ट्रक्चर की कमी के कारण उत्पन्न डिजिटल विभाजन के परिणामस्वरूप फ्रंटियर प्रौद्योगिकियों से संबंधित लाभ विश्व के सभी गरीब लोगों तक नहीं पहुँच पाएंगे।
- रोज़गार की अनिश्चितता
  - अनुमान के मुताबिक, फ्रंटियर प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रसार से आने वाले दशकों में लगभग 785 मिलियन श्रमिकों के रोज़गार पर खतरा पैदा हो सकता है जो कि एशिया-प्रशांत क्षेत्र में कुल रोज़गार का लगभग 50 प्रतिशत है।
- विश्वास और नैतिकता का प्रश्न
  - अनुमानत: सदी के मध्य तक विश्व की जनसंख्या 10 बिलियन तक पहुँच जाएगी, जिसके परिणामस्वरूप शासन व्यवस्था वर्तमान की अपेक्षा और अधिक जटिल हो जाएगी। विदित हो कि फ्रंटियर प्रौद्योगिकी स्वयं में कोई समस्या नहीं है, किंतु अत्यधिक विशाल जनसंख्या के कारण गोपनीयता और पारदर्शिता से संबंधित विभिन्न मुद्दे इस संदर्भ में काफी महत्त्वपूर्ण हो जाएंगे।
- विकासशील एवं अल्पविकसित देशों पर प्रभाव
  - विकासशील देश पहले से ही कम मानव पूंजी, संस्थानों की अकुशलता और उपयुक्त व्यापारिक माहौल की कमी जैसी समस्याओं का सामना कर रहे हैं जिसके कारण उनके लिये फ्रंटियर प्रौद्योगिकी को अपनाना एवं उससे संबंधित विभिन्न समस्याओं का सामना करना और कठिन हो जाएगा।

आगे की राह

विश्लेषकों के अनुसार, विकासशील एवं अल्पविकसित देश तमाम चुनौतियों के बावजूद फ्रंटियर प्रौद्योगिकी की नई लहर से लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस संदर्भ में आवश्यक है कि प्रौद्योगिकी एवं नवाचार की अगली पीढ़ी के लिये तैयार किये जाने वाले नीतिगत ढाँचे में फ्रंटियर प्रौद्योगिकी हेतु एक सक्षम वातावरण के निर्माण पर ध्यान केंद्रित किया जाए ताकि अर्थव्यवस्था, समाज और पर्यावरण जैसे क्षेत्रों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सके।

इसके लिये निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं:.

- इस संदर्भ में सर्वप्रथम कुशल सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी इन्फ्रास्ट्रक्चर के निर्माण की आवश्यकता है।
- डिजिटल क्रांति के बदलते स्वरूप के अनुरूप श्रमबल।
  - इस संदर्भ में रोज़गार सृजन करने वाले वर्ग के विकास के लिये आजीवन सीखने, नए कौशल विकसित करने और उद्यमिता विकास को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।
- सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) को मज़बूत करने के लिये नीतिगत ढाँचे का निर्माण किया जाना चाहिये ताकि चौथी औद्योगिक क्रांति से लाभ प्राप्त किया जा सके।
- एक ऐसे विनियामक ढाँचे की आवश्यकता है जो नवाचार को प्रतिकूल रूप से प्रभावित न करता हो।
- ज्ञात हो कि मात्र प्रौद्योगिकी के माध्यम से सफलता सुनिश्चित नहीं की जा सकेगी। नीति निर्माताओं को स्थानीय संदर्भों एवं स्थितियों के प्रति भी उत्तरदायी होना चाहिये ताकि वे एक ऐसे सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक तंत्र का निर्माण कर सकें जिसमें प्रौद्योगिकी से रोज़गार का सृजन होता हो और समावेशी विकास को गति मिलती हो।
- विभिन्न राष्ट्र की सरकारों को मुख्यत: चार क्षेत्रों: बुनियादी ढाँचे, मानव पूँजी, नीति नियमन, और वित्त में निवेश हेतु योजना के निर्माण पर ध्यान केंद्रित करना चाहिये।

नोट :

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी

भारत वन स्थिति रिपोर्ट और वन संरक्षण

संदर्भ

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन के रूप में वन आरंभ से ही मानव विकास के केंद्र में रहे हैं और इसीलिये वनों के बिना मानवीय जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हालाँकि बीते कुछ वर्षों से जिस प्रकार बिना सोचे समझे वनों की कटाई की जा रही है उसे देखते हुए इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि जल्द ही हमें इसके भयावह परिणाम देखने को मिल रहे हैं। विश्व के साथ-साथ भारत में भी वनों की कटाई का मुद्दा एक महत्त्वपूर्ण विषय बना हुआ है, इस संदर्भ में सरकार द्वारा कई प्रयास किये जा रहे हैं। सरकार के इन्हीं प्रयासों का परिणाम हाल ही में जारी भारत वन स्थिति रिपोर्ट-2019 में देखने को मिला है। रिपोर्ट के अनुसार, बीते दो वर्षों में देश के हरित क्षेत्रों में बढ़ोतरी दर्ज की गई है।

भारत वन स्थिति रिपोर्ट-2019

- भारत वन स्थिति रिपोर्ट को वर्ष 1987 से 'भारतीय वन सर्वेक्षण' द्वारा द्विवार्षिक आधार पर प्रकाशित किया जा रहा है और इस श्रेणी की 16वीं यह रिपोर्ट है।
- ज्ञात हो कि भारत वन स्थिति रिपोर्ट को देश के वन संसाधनों के आधिकारिक मूल्यांकन के रूप में मान्यता प्राप्त है।
- इस रिपोर्ट में वन एवं वन संसाधनों के आकलन के लिये पूरे देश में 2200 से अधिक स्थानों से प्राप्त आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। मौजूदा रिपोर्ट में 'वनों के प्रकार एवं जैव विविधता' (Forest Types and Biodiversity) नामक एक नया अध्याय जोड़ा गया, जिसके अंतर्गत वृक्षों की प्रजातियों को 16 मुख्य वर्गों में विभाजित कर उनका 'चैंपियन एवं सेठ वर्गीकरण' (Champion & Seth Classification) के आधार पर आकलन किया गया है।

ध्यातव्य है कि हैरी जॉर्ज चैंपियन (Harry George Champion) ने वर्ष 1936 में भारत की वनस्पति का सबसे लोकप्रिय एवं मान्य वर्गीकरण किया था। जिसके पश्चात् वर्ष 1968 में चैंपियन एवं एस.के. सेठ (S.K Seth) ने मिलकर स्वतंत्र भारत के लिये इसे पुन: प्रकाशित किया। यह वर्गीकरण पौधों की संरचना, आकृति विज्ञान और पादपी स्वरुप पर आधारित है। इस वर्गीकरण में वनों को 16 मुख्य वर्गों में विभाजित कर उन्हें 221 उपवर्गों में बाँटा गया है।

कुल वनाच्छादित क्षेत्रफल में हुई है वृद्धि

16वीं भारत वन स्थिति रिपोर्ट के मुताबिक वर्तमान में देश में वनों एवं वृक्षों से आच्छादित कुल क्षेत्रफल लगभग 8,07,276 वर्ग किमी. है, जो कि देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 24.56 प्रतिशत है। यदि हालिया रिपोर्ट की तुलना वर्ष 2017 की रिपोर्ट से की जाए तो ज्ञात होता है कि इस दौरान देश में वनों से आच्छादित कुल क्षेत्रफल में लगभग 3,976 वर्ग किमी. यानी 0.56 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जबकि वृक्षों से आच्छादित क्षेत्रफल में लगभग 1,212 वर्ग किमी. यानी 1.29 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। हालाँकि उक्त आँकड़ों को भारत वन स्थिति रिपोर्ट-2019 के मात्र एक पक्षी के रूप में देखा जाना चाहिये, क्योंकि रिपोर्ट का एक अन्य पक्ष बताता है कि बीते दो वर्षों में 2,145 वर्ग किमी. घने वन (Dense Forests) गैर-वनों (Non-Forests) में परिवर्तित हो गए हैं।

रिपोर्ट के अनुसार, देश में कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का वनावरण क्षेत्र लगभग 7,12, 249 वर्ग किमी. है (21.67 प्रतिशत)। गौरतलब है कि बीते कई वर्षों से यह संख्या 21-25 प्रतिशत के आस-पास ही रही है, जबकि राष्ट्रीय वन नीति, 1988 के अनुसार यह देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग एक-तिहाई होना अनिवार्य है। यह दर्शाता है कि हम वर्ष 1988 में निर्मित राष्ट्रीय वन नीति के अनुरूप कार्य करने में असफल रहे हैं।

राष्ट्रीय वन नीति, 1988

स्वतंत्रता से पूर्व औपनिवेशिक भारत में बनी वन नीतियाँ मुख्यत: राजस्व प्राप्ति तक केंद्रित थीं। जिनका स्वामित्व शाही वन विभाग (Imperial Forest Department) के पास था, जो वन संपदा का संरक्षणकर्त्ता और प्रबंधक भी था। स्वतंत्रता के बाद भी वनों को मुख्यत: उद्योगों हेतु कच्चे माल के स्रोत के रूप में ही देखा गया। जिसके पश्चात् राष्ट्रीय वन नीति, 1988 का निर्माण हुआ जिसमें वनों को महज़

नोट :

राजस्व स्रोत के रूप में न देखकर इन्हें पर्यावरणीय संवेदनशीलता एवं संरक्षण के महत्त्वपूर्ण अवयव के रूप में देखा गया। साथ ही इस नीति में यह भी कहा गया कि वन उत्पादों पर प्राथमिक अधिकार उन समुदायों का होना चाहिये जिनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति इन वनों पर निर्भर करती है। इस राष्ट्रीय नीति में वनों के संरक्षण में लोगों की भागीदारी बढ़ाने पर भी जोर दिया गया।

पूर्वोत्तर राज्यों के वनावरण क्षेत्र में कमी

- पूर्वोत्तर क्षेत्र में वनावरण क्षेत्र लगभग 1,70,541 वर्ग किमी. है, जो कि इसके भौगोलिक क्षेत्र का 65.05 प्रतिशत है। हालिया रिपोर्ट के मुताबिक, उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के वनावरण क्षेत्र में लगभग 765 वर्ग किमी. (अर्थात् 0.45 प्रतिशत) की कमी आई है।
- असम और त्रिपुरा के अतिरिक्त इस क्षेत्र के सभी राज्यों के वनावरण क्षेत्र में कमी आई है। विश्लेषकों के अनुसार धरती पर बढ़ता जन दबाव, जंगलों का दोहन और वैज्ञानिक प्रबंधन नीति की कमी जैसे कारणों से इस क्षेत्रों में जंगल काफी प्रभावित हुए हैं।
- हालाँकि पूर्वोत्तर राज्यों के वनावरण क्षेत्र में कमी को लेकर पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्री प्रकाश जावड़ेकर का कहना है कि इस क्षेत्र के अनावरण में गिरावट चिंता का विषय नहीं है।
- उल्लेखनीय है कि सर्वाधिक वनावरण प्रतिशत वाले राज्यों में अभी भी शीर्ष पाँच स्थानों पर पूर्वोत्तर के ही राज्य हैं। इसमें पहले स्थान पर मिज़ोरम (85.41 प्रतिशत) है, जबकि दूसरे और तीसरे स्थान पर क्रमश: अरुणाचल प्रदेश (79.63 प्रतिशत) और मेघालय (76.33 प्रतिशत) हैं।

भारत वन स्थिति रिपोर्ट और राजधानी दिल्ली

- भारत वन स्थिति रिपोर्ट-2019 के अनुसार राजधानी दिल्ली में वनावरण क्षेत्र में वृद्धि नाममात्र की है। रिपोर्ट के अनुसार, राजधानी के अनावरण क्षेत्र में मात्र 3 वर्ग किमी. की वृद्धि हुई है।
- दिल्ली का कुल वन क्षेत्र लगभग 195.44 वर्ग किमी. है, जो कि राष्ट्रीय राजधानी के कुल क्षेत्र का 13.18 प्रतिशत है। आँकड़ों के मुताबिक लगभग 136 वर्ग किमी. का अनावरण क्षेत्र दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम दिल्ली में है।
- यह रिपोर्ट दर्शाती है कि अभी दिल्ली के अन्य क्षेत्र विशेषकर पूर्वी दिल्ली में वृक्षारोपण कार्य किया जाना शेष है।

रिपोर्ट से संबंधित अन्य महत्त्वपूर्ण बिंदु

- वर्तमान आकलनों के अनुसार, भारत के वनों का कुल कार्बन स्टॉक लगभग 7,142.6 मिलियन टन अनुमानित है। वर्ष 2017 के आकलन की तुलना में इसमें लगभग 42.6 मिलियन टन की वृद्धि हुई है। भारतीय वनों की कुल वार्षिक कार्बन स्टॉक में वृद्धि 21.3 मिलियन टन है, जोकि लगभग 78.1 मिलियन टन कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2) के बराबर है। भारत के वनों में 'मृदा जैविक कार्बन' (Soil Organic Carbon-SOC) कार्बन स्टॉक में सर्वाधिक भूमिका निभाते हैं जोकि अनुमानत: 4004 मिलियन टन की मात्रा में उपस्थित हैं।
    - SOC भारत के वनों के कुल कार्बन स्टॉक में लगभग 56% का योगदान देते हैं।
- देश में मैंग्रोव वनस्पति में वर्ष 2017 के आकलन की तुलना में कुल 54 वर्ग किमी. (1.10%) की वृद्धि हुई है।
- भारत के पहाड़ी ज़िलों में कुल वनावरण क्षेत्र 2,84,006 वर्ग किमी. है जो कि इन ज़िलों के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 40.30 प्रतिशत है। वर्तमान आकलन में ISFR-2017 की तुलना में भारत के 140 पहाड़ी जिलों में 540 वर्ग किमी. (0.19 प्रतिशत) की वृद्धि देखी गई है।

वनीकरण कार्यक्रम

- ग्रीन इंडिया मिशन

वर्ष 2014 में केंद्र सरकार द्वारा ग्रीन इंडिया मिशन को एक केंद्र प्रायोजित योजना के रूप में शामिल करने के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की गई थी। इस मिशन के तहत 12वीं पंचवर्षीय योजना में लगभग 13,000 करोड़ रुपए के निवेश से वनावरण में 6 से 8 मिलियन हेक्टेयर की वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। यह मिशन जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्ययोजना के अंतर्गत आने वाले मिशनों में से एक है।

नोट :

- REDD तथा REDD +

REDD जहाँ विकासशील देशों द्वारा उनके वन संसाधनों के बेहतर प्रबंधन एवं बचाव करने हेतु प्रोत्साहन राशि तक सीमित है, वहीं REDD + निर्वनीकरण एवं वन निम्नीकरण वनों के संरक्षण, संपोषणीय प्रबंधन एवं वन कार्बन भंडार के सकारात्मक तत्त्वों हेतु भी प्रोत्साहन राशि देता है। REDD + में गुणवत्ता संवर्द्धन एवं वन आवरण (Forest Cover) का संवर्द्धन भी शामिल है, जबकि ऐसी व्यवस्था REDD में नहीं है।

वन संरक्षण की चुनौतियाँ

- बढ़ती जनसंख्या, वन आधारित उद्योगों और कृषि के विस्तार के लिये अतिक्रमण तेज़ी से बढ़ रहा है।
- हाल ही में सामने आया आरे जंगलों का मुद्दा पर्यावरण और विकास के मध्य संघर्ष को पूर्णत: स्पष्ट करता है। ऐसे में हम तब तक वनों का संरक्षण सुनिश्चित नहीं कर पाएँगे जब तक हम पर्यावरण और विकास के संघर्ष को समाप्त करने का कोई वैकल्पिक उपाय न खोज लें।
- कुछ अन्य देशों की तुलना में भारतीय वनों की उत्पादकता बहुत कम है। उदाहरण के लिये भारतीय वन की वार्षिक उत्पादकता मात्र 0.5 घन मीटर प्रति हेक्टेयर है, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में यह 1.25 घन मीटर प्रति हेक्टेयर, जापान में 1.8 घन मीटर प्रति हेक्टेयर और फ्रांस में 3.9 घन मीटर प्रति हेक्टेयर है।

निष्कर्ष

किसी देश की संपन्नता उसके निवासियों की भौतिक समृद्धि से अधिक वहाँ की जैव विविधता से आँकी जाती है। भारत में भले ही विकास के नाम पर बीते कुछ दशकों में वनों का असंतुलित दोहन किया गया है, लेकिन हमारी वन संपदा विश्वभर में अनूठी और विशिष्ट है। ऑक्सीजन का मुख्य स्रोत वृक्ष हैं, इसलिये वृक्षों पर ही हमारा जीवन आश्रित है। यदि वृक्ष नहीं रहेंगे तो किसी भी जीव-जंतु का अस्तित्व नहीं रहेगा। अत: आवश्यक है कि वनों की कटाई और वृक्षारोपण जैसे मुद्दों पर गंभीरता से विचार किया जाए तथा इस विषय को नीति निर्माण के केंद्र में रखा जाए।

वनाग्नि: एक वैश्विक चिंता के रूप में

संदर्भ

बीते वर्ष सितंबर माह में शुरू हुई ऑस्ट्रेलिया की भीषण वनाग्नि ने देश में काफी बड़े पैमाने पर विनाश किया है, इस वनाग्नि में मुख्य रूप से ऑस्ट्रेलिया के न्यू साउथ वेल्स और क्वींसलैंड जैसे क्षेत्र प्रभावित हुए हैं। हालाँकि इन क्षेत्रों के लिये वनाग्नि कोई नई बात नहीं है, क्योंकि यहाँ प्रत्येक वर्ष इस अवधि में जंगलों में आग की घटनाएँ देखी जाती हैं, किंतु इस वर्ष वनाग्नि ने काफी विराट रूप धारण कर लगभग 10 लाख हेक्टेयर भूमि को तबाह कर दिया है। ऑस्ट्रेलिया के अतिरिक्त विश्व के कई अन्य हिस्सों में भी बीते कुछ समय में वनाग्नि की घटनाएँ देखने को मिली हैं, मसलन बीते वर्ष ही ब्राज़ील के अमेज़न जंगलों में काफी भीषण आग लगी थी। मई 2019 में उत्तराखंड (भारत) के अल्मोड़ा एवं नैनीताल ज़िलों में भी बड़े पैमाने पर वनाग्नि देखी गई थी। विश्व भर में लगातार बढती वनाग्नि की घटनाएँ वैश्विक समाज के समक्ष बड़ी चिंता के रूप में उभर रही हैं।

वर्तमान परिदृश्य:

- ऑस्ट्रेलिया के वनों में आग पिछले वर्ष सितंबर से ही लगी है लेकिन दिसंबर महीने में रिकार्ड तापमान की वजह से इसका स्वरूप भीषणतम स्थिति में पहुँच गया है। डेनमार्क देश के बराबर का क्षेत्रफल ऑस्ट्रेलिया में वनाग्नि की चपेट में है।
- ऑस्ट्रेलिया के वन और राष्ट्रीय उद्यान का बड़ा हिस्सा जलकर खाक हो चुका है। इस तबाही को देखते हुए यह कहा जा रहा है कि यह बीते 10 वर्षों में ऑस्ट्रेलिया में सबसे भीषण वनाग्नि है।
- ऑस्ट्रेलिया के कुछ विशिष्ट जीव-जंतु भी इस वनाग्नि की चपेट आने से खत्म हो गए हैं, ऑस्ट्रेलिया का विशिष्ट जीव कोआला (जो मुख्यत: वृक्षों पर ही रहता है) की लगभग आधी जनसंख्या इस वनाग्नि की शिकार हो चुकी है। अधिक जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्रों में सक्रिय होने के कारण ऑस्ट्रेलिया की वनाग्नि अधिक चिंताजनक बन गई है।
- ब्राज़ील स्थित नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर स्पेस रिसर्च (National Institute for Space Research-INPE) के आँकड़ों के मुताबिक, वर्ष 2019 में ब्राज़ील के अमेज़न वनों (Amazon Forests) ने कुल 74,155 बार आग का सामना किया था। साथ ही यह भी सामने आया था कि अमेज़न वन में आग लगने की घटना वर्ष 2018 से 85 प्रतिशत तक बढ़ गई है।

नोट :

- ध्यातव्य है कि वर्ष 2019 में अमेज़न के वर्षा वनों में लगभग 9 लाख हेक्टेयर तथा वर्ष 2018 में कैलिफोर्निया के जंगलों में लगी आग लगभग 18 लाख हेक्टेयर क्षेत्र तक फैल गई थी।
- दुनिया भर में वनाग्नि की घटनाएँ लगातार बढ़ती जा रही हैं और भारत भी इन घटनाओं से खुद को बचा नहीं पाया है। बीते वर्ष अल्मोड़ा एवं नैनीताल ज़िलों में बड़े पैमाने पर वनाग्नि की घटनाओं ने देश के नीति निर्माताओं को आपदा प्रबंधन, पर्यावरणीय सुरक्षा, बहुमूल्य वनस्पति एवं वन्यजीवों के संरक्षण जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने को विवश कर दिया था।

वनाग्नि के कारण:

- विश्व भर में देखे जानी वाली वनाग्नि की अधिकांश घटनाएँ मानव निर्मित होती हैं। वनाग्नि के मानव निर्मित कारकों में कृषि हेतु नए खेत तैयार करने के लिये वन क्षेत्र की सफाई, वन क्षेत्र के निकट जलती हुई सिगरेट या कोई अन्य ज्वलनशील वस्तु छोड़ देना आदि शामिल हैं।
    - ब्राज़ील के अंतरिक्ष अनुसंधान केंद्र के अनुसार, अमेज़न के वर्षा वनों में दर्ज की जाने वाली 99 प्रतिशत आग की घटनाएँ मानवीय हस्तक्षेप के कारण या आकस्मिक रूप से या किसी विशेष उद्देश्य से होती हैं।
- वनाग्नि के कुछ प्राकृतिक कारण भी गिनाए जाते हैं जिनमें बिजली गिरना, पेड़ की सूखी पत्तियों के मध्य घर्षण, तापमान की अधिकता, पेड़-पौधों में शुष्कता आदि शामिल हैं।
- वर्तमान में वनों में अतिशय मानवीय अतिक्रमण/हस्तक्षेप के कारण इस प्रकार की घटनाओं में बारंबरता देखी जा रही है। विभिन्न प्रकार के मानवीय क्रियाकलायों जैसे-पशुओं को चराना, झूम खेती, बिजली के तारों का वनों से होकर गुज़रना तथा वनों में लोगों का धूम्रपान करना आदि से भी ऐसी घटनाओं में वृद्धि हुई है।
    - झूम खेती के तहत पहले वृक्षों तथा वनस्पतियों को काटकर उन्हें जला दिया जाता है। इसके बाद साफ की गई भूमि पर पुराने उपकरणों (लकड़ी के हलों आदि) से जुताई करके बीज बो दिये जाते हैं। फसल पूर्णत: प्रकृति पर निर्भर होती है और उत्पादन बहुत कम हो पाता है।

ऑस्ट्रेलिया की वनाग्नि के कारण

- ऑस्ट्रेलिया की भौगोलिक स्थिति उष्णकटिबंधीय है जिसके कारण यहाँ पर सूर्यातप की पर्याप्त मात्रा वर्ष भर मिलती रहती है। इसके अतिरिक्त इसका क्षेत्रफल विस्तृत है जिसके कारण यहाँ पर महाद्वीपीय प्रभाव देखा जाता है।
- भौगोलिक स्तर पर यह वनाग्नि न्यू साउथ वेल्स राज्य को बुरी तरह प्रभावित कर रही है। क्योंकि इसकी एक तरफ ग्रेट डिवाइडिंग पर्वत श्रेणी है, तो दूसरी तरफ से विशाल मरुस्थल है। ग्रेट डिवाइडिंग पर्वत श्रेणी ऑस्ट्रेलिया में वर्षा विभाजक का कार्य करती है, इसके पूर्वी भाग में पश्चिमी भाग की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है तथा पश्चिमी भाग वर्षा भू-वृष्टि क्षेत्र के अंतर्गत आता है। यही भाग इस समय वनाग्नि से प्रभावित है, वर्षा की सीमित मात्रा और मरुस्थलीय क्षेत्र से आने वाली तीव्र हवाओं के कारण वनाग्नि की स्थिति और गंभीर हो जाती है।
- वनाग्नि से प्रभावित इस क्षेत्र में सवाना जलवायु पाई जाती है जहाँ की वनस्पति शुष्क और अधिक ज्वलनशील होती है। इसके कारण वनाग्नि तेज़ी से विस्तृत क्षेत्र में फैल जाती है।
- ध्यातव्य है कि पिछले तीन वर्षों से ऑस्ट्रेलिया भीषण सूखे का सामना कर रहा है, मौसम विज्ञान विभाग के अधिकारियों ने वर्ष 2019 को वर्ष 1900 के बाद सबसे गर्म वर्ष बताया है। इस दौरान तापमान औसत से 2°C अधिक था, जबकि वर्षा में सामान्य से 40 प्रतिशत की कमी देखी गई।
- इस वर्ष ऑस्ट्रेलिया के असामान्य मौसम में हिंद महासागर द्विध्रुव (IOD) की भूमिका भी है। इस वर्ष पूर्वी हिंद महासागर क्षेत्र में सामान्य से अधिक ठंड देखी गई, जो ऑस्ट्रेलिया में हुई कम वर्षा के कारणों में से एक है।

ऑस्ट्रेलिया में वनाग्नि को रोकने के प्रयास:

- एयरक्राफ्ट, हेलीकॉप्टर, फिक्स्ड विंग एयरक्राफ्ट और बड़े एयर टैंकर इस वनाग्नि को बुझाने के लिये प्रयोग में लाए जा रहे हैं। इनमें से ज़्यादातर पानी की तेज़ बौछार करने में सक्षम हैं।
- सेना के वायुयान और नेवी के क्रूज़र का प्रयोग भी वनाग्नि को बुझाने के लिये किया जा रहा है।
- अमरीका, कनाडा और न्यूज़ीलैंड भी इस कार्य में ऑस्ट्रेलिया की सहायता कर रहे हैं। इन देशों की ओर से ऑस्ट्रेलिया को अतिरिक्त मदद और सुविधाएँ मुहैया कराई गई हैं।

नोट :

वनाग्नि का प्रभाव

- वनाग्नि से क्षेत्र विशेष की प्राकृतिक संपदा को काफी नुकसान पहुँचता है, भारतीय वन सर्वेक्षण ने वनाग्नि से हुई वार्षिक वन हानि 440 करोड़ रुपए आँकी है। जंगलों में लगी आग से कई जानवर बेघर हो जाते हैं और नए स्थान की तलाश में वे शहरों की ओर आते हैं।
- वनों की मिट्टी में मौजूद पोषक तत्त्वों में भी भारी कमी आती है और उन्हें वापस प्राप्त करने में भी लंबा समय लगता है। वनाग्नि के परिणामस्वरूप मिट्टी की ऊपरी परत में रासायनिक और भौतिक परिवर्तन होते हैं, जिसके कारण भू-जल स्तर भी प्रभावित होता है।
- इससे आदिवासियों और ग्रामीण गरीबों की आजीविका को भी नुकसान पहुँचता है। आँकड़ों के अनुसार, भारत में लगभग 300 मिलियन लोग अपनी आजीविका के लिये वन उत्पादों के संग्रह पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर हैं।
- वनों में लगी आग को बुझाने के लिये काफी अधिक आर्थिक और मानवीय संसाधनों की ज़रूरत होती है, जिसके कारण सरकार को काफी अधिक नुकसान का सामना करना पड़ता है।
- वनाग्नि से वनों पर आधारित उद्योगों एवं रोज़गार की हानि होती है और कई लोगों की आजीविका का साधन प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। इसके अलावा वनों पर आधारित पर्यटन उद्योग को भी खासा नुकसान होता है।
- पिछले कुछ वर्षों में कैलिफोर्निया, ऑस्ट्रेलिया और भूमध्य के क्षेत्र में वनाग्नि के कई मामले देखे गए हैं। ऐतिहासिक रूप से ये क्षेत्र गर्म एवं शुष्क वातावरण के लिये जाने जाते हैं परंतु जलवायु परिवर्तन के कारण ये क्षेत्र और अधिक गर्म तथा शुष्क हुए हैं। जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में तापमान बढ़ने के साथ-साथ वर्षा में कमी आई है।

वनाग्नि और जलवायु परिवर्तन

- वनाग्नि से न सिर्फ क्षेत्र विशेष की संपदा को नुकसान पहुँचता है, बल्कि यह जलवायु को भी प्रभावित करती है। वनाग्नि से कार्बन डाइऑक्साइड तथा अन्य ग्रीनहाउस गैसों का काफी अधिक मात्रा में उत्सर्जन होता है।
- इसके अलावा वनाग्नि से वे पेड़-पौधे भी नष्ट हो जाते हैं, जो वातावरण से CO_2 को समाप्त करने का कार्य करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वनाग्नि जलवायु परिवर्तन में भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

वनाग्नि संबंधी चुनौतियाँ

- विश्व के विभिन्न देशों खासकर भारत में वनाग्नि से निपटने के लिये उपयुक्त नीतियों का अभाव है, वनाग्नि प्रबंधन से संबंधित स्पष्ट दिशा-निर्देश नहीं हैं। ज्ञात हो कि वर्ष 2017 में राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (NGT) ने पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय से इस संदर्भ में राष्ट्रीय स्तर पर एक नीति के निर्माण के लिये कहा था, किंतु अब तक इस दिशा में कोई कार्य नहीं किया गया है।
- वनाग्नि से निपटने के लिये फंड की कमी भी एक बड़ी चुनौती है।
- आँकड़ों के मुताबिक, अधिकांश वनाग्नि की घटनाएँ मानव निर्मित होती हैं, जिनका पूर्वानुमान लगाना अपेक्षाकृत कठिन होता है।

आगे की राह

- वनाग्नि को जलवायु परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण आयाम मानते हुए इससे निपटने के लिये हमें वैश्विक स्तर पर नीति निर्माण की आवश्यकता है, जो वनाग्नि और उससे संबंधित विभिन्न महत्त्वपूर्ण पहलुओं को संबोधित करती हो।
- वनाग्नि प्रबंधन के संबंध में कई देशों द्वारा कुछ विशेष मॉडल प्रयोग किये जा रहे हैं, आवश्यक है कि अन्य देश भी इन्हें अपने अनुसार परिवर्तित कर प्रयोग में लाएँ।

वनाग्नि का पता लगाने के लिये रेडियो-ध्वनिक साउंड सिस्टम (Radio-Acoustic Sound System) और डॉप्लर रडार (Doppler Radar) जैसी आधुनिक तकनीकों को अपनाया जाना चाहिये।

सामाजिक मुद्दे

आवासीय गरीबी और भारत

संदर्भ

संयुक्त राष्ट्र तथा उसके विभिन्न घटक निकायों ने पर्याप्त आवास के अधिकार को बुनियादी मानवाधिकार के रूप में स्वीकृति प्रदान की है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र समिति ने रेखांकित किया है कि पर्याप्त आवास के अधिकार की व्याख्या करते समय संकीर्णता का भाव नहीं होना चाहिये अर्थात् पर्याप्त आवास के अधिकार को मात्र चार दीवारों और एक छत के रूप में नहीं देखा जाना चाहिये। भारत ने पर्याप्त आवास के अधिकार के संदर्भ में विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय समझौतों पर हस्ताक्षर किये हैं, किंतु इसके बावजूद देश में सभी नागरिकों को मात्र एक आवास (पर्याप्त आवास नहीं) उपलब्ध कराना भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य बन गया है। पर्याप्त आवास के अधिकार की सर्वाधिक उपेक्षा देश के ग्रामीण क्षेत्र में देखी जा सकती है, जहाँ भौतिक इन्फ्रास्ट्रक्चर के साथ-साथ सामाजिक इन्फ्रास्ट्रक्चर जैसे- स्वास्थ्य एवं शिक्षा सुविधाएँ आदि उपलब्ध कराना भी एक चुनौती है।

'आवासीय गरीबी' की अवधारणा

- अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार, गरीबी का आशय 'बुनियादी मानवीय आवश्यकताओं से वंचित रहने की स्थिति' से है। आवासीय गरीबी की अवधारणा भी गरीबी की अवधारणा के अनुरूप ही है।
- हालाँकि आवासीय गरीबी की अवधारणा को समझने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम 'पर्याप्त आवास' की अवधारणा को समझें, क्योंकि पर्याप्त आवास कि कमी ही आवासीय गरीबी को जन्म देती है।
  - पर्याप्त आवास में चार दीवारों और एक छत के अतिरिक्त बिजली एवं पानी की आपूर्ति और स्वच्छता तथा सीवेज प्रबंधन जैसी बुनियादी सुविधाओं को भी शामिल किया जाता है।
- विश्लेषकों का मानना है कि आवासीय गरीबी एक व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक रूप से स्वास्थ्य रहने तथा आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से उत्पादक होने की क्षमता को प्रभावित करती है।

पर्याप्त आवास का अधिकार

- भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद-21 के तहत पर्याप्त आवास के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी है।
- दक्षिण अफ्रीका के संविधान की धारा 26 में भी पर्याप्त आवास के अधिकार का उल्लेख किया गया है। जिसके अनुसार:
  - दक्षिण अफ्रीका के प्रत्येक नागरिक को पर्याप्त आवास तक पहुँच का अधिकार है।
  - राष्ट्र को उपलब्ध संसाधनों के दायरे में पर्याप्त आवास के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिये यथासंभव प्रयास करना चाहिये।
- मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद-25 के अनुसार, 'प्रत्येक व्यक्ति को अपने तथा अपने परिवार के लिये गरिमामयी जीवन स्तर की प्राप्ति का अधिकार है, जिसमें भोजन, कपड़े, आवास, चिकित्सा तथा अन्य आवश्यक सामाजिक सेवाएँ शामिल हैं।'
- इसके अतिरिक्त कई अन्य देशों जैसे- नेपाल, बांग्लादेश, नाइजीरिया और युगांडा आदि ने भी अपने-अपने संविधान में पर्याप्त आवास के अधिकार को स्थान दिया है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय गरीबी

- आधिकारिक आँकड़ों के अनुसार, देश में लगभग 25.85 मिलियन लोग आवासीय गरीबी का सामना कर रहे हैं, जिसमें से लगभग 82 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में हैं और शेष शहरी क्षेत्रों में।
- ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी क्षेत्रों में आवासीय गरीबी के अनुपात का अंतर काफी अधिक है और यह ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है।
  - ग्रामीण क्षेत्रों में अकुशल मज़दूर तथा कम आय वाले लोग गरीबी के इस प्रकार से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं।

- आवासीय गरीबी के विभिन्न पक्षों की बात करें तो ग्रामीण क्षेत्रों के लगभग 45 प्रतिशत परिवार बिना बिजली, बायोगैस और LPG के जीवन व्यतीत कर रहे हैं, जबकि 69 प्रतिशत परिवारों के पास खुद का शौचालय नहीं है।
- इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय व्यवस्था से असंतोष तथा अन्य जगहों पर बेहतर आवास की संभावना के कारण आंतरिक प्रवास की दर भी काफी उच्च रहती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय गरीबी के कारण

- भारत के ग्रामीण क्षेत्र में आवासीय सेक्टर लगातार सार्थक बाज़ार हस्तक्षेप के अभाव का सामना कर रहा है, जिसमें आवास के लिये विकसित भूमि की आपूर्ति और वित्तपोषण शामिल हैं।
- यह कहना उचित नहीं होगा कि भारत ने कभी गरीबी उन्मूलन के लिये व्यापक प्रयास नहीं किये, किंतु इस प्रकार के सभी प्रयास शहरी-ग्रामीण विभाजन को कम करने में कारगर साबित नहीं हो सके।
- मांग और पूर्ति के मध्य असामंजस्य के कारण आज भी देश में लाखों लोग आवासीय गरीबी में जीवन व्यतीत कर रहे हैं।
- नियोजन के आरंभिक चरण के दौरान वित्तपोषण की कमी ने नीति निर्माताओं को विकास के सिद्धांत के अतिव्यापी दर्शन को अपनाने के लिये मजबूर किया है, जिसके तहत यह उम्मीद की जाती है कि शहरी केंद्रित विकास का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों को भी मिलेगा।
- गरीबी और वित्त के किसी भी औपचारिक स्रोत तक पहुँच की कमी के कारण ग्रामीण लोग सुरक्षित एवं स्थायी घर बनाने में असमर्थ होते हैं।

सरकार के प्रयास- प्रधानमंत्री आवास योजना

- 1 मार्च, 2016 को पूर्ववर्ती इंदिरा आवास योजना (Indira Awaas Yojana-IAY) का पुनर्गठन कर इसे प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्राम (PMAY-G) नाम दिया गया था।
- PMAY-G का उद्देश्य वर्ष 2022 तक सभी आवासहीन गृहस्वामियों और कच्चे तथा जीर्ण-शीर्ण घरों में रहने वाले लोगों को बुनियादी सुविधाओं के साथ पक्के घर उपलब्ध कराना है।
- इस योजना की कुल लागत का बँटवारा केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के बीच 60:40 के अनुपात में किया जाता है, जबकि पूर्वोत्तर तथा हिमालयी राज्यों के लिये यह राशि 90:10 के अनुपात में साझा की जाती है।

आगे की राह

- यदि देश के ग्रामीण क्षेत्रों में हमें आवास विभाजन या असमानता को कम करना है तो इसके लिये एक 'एकीकृत आवासीय विकास' रणनीति की आवश्यकता होगी, जिसे 'मिशन मोड' में लागू किया जाएगा।
- शासन के विभिन्न स्तरों पर सामाजिक अंकेक्षण के साथ-साथ इस तरह के मिशन को लागू करने के संबंध में जवाबदेही तय की जानी चाहिये।
- पेयजल आपूर्ति, घरेलू शौचालय, ऊर्जा और जल निकासी से संबंधित अन्य लागतों के अलावा नई आवासीय इकाइयों के पुनर्विकास को ध्यान में रखकर संसाधनों के सही आवंटन की आवश्यकता है।
- इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सार्वजनिक-निजी-साझेदारी परियोजनाओं (PPP Projects) को प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है।

नोट :

आंतरिक सुरक्षा

मॉब लिंचिंग: कारण और प्रभाव

संदर्भ

बीते कुछ वर्षों में मॉब लिंचिंग (Mob Lynching) की बढ़ती घटनाओं ने सामाजिक एवं आर्थिक रूप से शोषित वर्गों और हाशिये पर मौजूद समुदायों के मध्य एक भय का माहौल पैदा कर दिया है। ज्ञात हो कि वर्ष 2015 के बाद से NCRB ने लिंचिंग के मामलों से संबंधित आँकड़े भी संकलित नहीं किये हैं। इस संदर्भ में NCRB का कहना था कि मॉब लिंचिंग को लेकर राज्यों द्वारा जो आँकड़े प्रस्तुत किये गए वे 'अविश्वसनीय' थे। हालाँकि मॉब लिंचिंग को लेकर विभिन्न स्वतंत्र संस्थाओं द्वारा एकत्रित आँकड़े चौंकाने वाले हैं। वर्ष 2018 में सर्वोच्च न्यायालय ने लिंचिंग को 'भीड़तंत्र के एक भयावह कृत्य' के रूप में संबोधित करते हुए केंद्र सरकार व राज्य सरकारों को कानून बनाने के दिशा-निर्देश दिये थे। इसके बावजूद विभिन्न राज्यों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है और लिंचिंग की घटनाएँ लगातार बढ़ती जा रही हैं।

क्या होती है मॉब लिंचिंग?

- जब अनियंत्रित भीड़ द्वारा किसी दोषी को उसके किये अपराध के लिये या कभी-कभी मात्र अफवाहों के आधार पर ही बिना अपराध किये भी तत्काल सज़ा दी जाए अथवा उसे पीट-पीट कर मार डाला जाए तो इसे भीड़ द्वारा की गई हिंसा या मॉब लिंचिंग (Mob Lynching) कहते हैं।
  - इस तरह की हिंसा में किसी कानूनी प्रक्रिया या सिद्धांत का पालन नहीं किया जाता और यह पूर्णत: गैर-कानूनी होती है।
- वर्ष 2017 का पहलू खान हत्याकांड मॉब लिंचिंग का एक बहुचर्चित उदाहरण है, जिसमें कुछ तथाकथित गौ रक्षकों की भीड़ ने गौ तस्करी के झूठे आरोप में पहलू खान की पीट-पीट कर हत्या कर दी थी।
- यह तो सिर्फ राजस्थान का ही उदाहरण है, इसके अतिरिक्त देश के कई अन्य हिस्सों में भी ऐसी ही घटनाएँ सामने आई हैं।

लिंचिंग के कारण

- भारत में धर्म और जाति के नाम पर होने वाली हिंसा की जड़ें काफी मज़बूत हैं। वर्तमान में लगातार बढ़ रहीं लिंचिंग की घटनाएँ अधिकांशत: असहिष्णुता और अन्य धर्म तथा जाति के प्रति घृणा का परिणाम है।
  - वर्ष 2002 में हरियाणा के पाँच दलितों की गौ हत्या के आरोप में लिंचिंग कर दी गई थी। वहीं सितंबर 2015 में एक अज्ञात समूह ने मोहम्मद अखलाक और उनके बेटे दानिश पर गाय की हत्या करने और मांस का भंडारण करने का आरोप लगाते हुए पीट-पीट कर उनकी हत्या कर दी थी।
  - इन घटनाओं से मॉब लिंचिंग में धर्म और जाति का दृष्टिकोण स्पष्ट तौर पर ज़ाहिर होता है।
- यह कहा जा सकता है कि देश में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदाय के बीच अविश्वास की एक गहरी खाई है जो कि हमेशा एक-दूसरे को संशय की दृष्टि से देखने के लिये उकसाती है और मौका मिलने पर वे एक-दूसरे से बदला लेने के लिये भीड़ का इस्तेमाल करते हैं।
- आधुनिकता के साथ ही हमारे अंदर व्यक्तिवाद की भावना का विकास हुआ है और हमारे सामाजिक जुड़ाव में कमी आई है, जिसके कारण हम विविधता की सराहना करना भूल गए हैं।
- अक्सर यह कहा जाता है कि 'भीड़ का कोई चेहरा नहीं होता' और शायद इसी कारण से भीड़ में मौजूद लोग सही और गलत के बीच फर्क नहीं करते हैं।
- लिंचिंग में संलिप्त लोगों की गिरफ्तारी न होना देश में एक बड़ी समस्या है। यह न केवल पुलिस व्यवस्था की नाकामी को उजागर करता है, बल्कि अपराधियों को प्रोत्साहन देने का कार्य भी करता है।
- भारत में जनप्रतिधियों के नैतिक आचरण को नियंत्रित करने को लेकर कोई विशेष प्रावधान नहीं हैं, जिसके कारण भारत में निजी हमले तथा अपमानजनक और नफरत फैलाने वाले भाषण काफी सामान्य हो गए हैं और ये भाषण भी मॉब लिंचिंग में बड़ी भूमिका अदा करते हैं।

नोट :

संवैधानिक प्रावधान

- भारतीय दंड संहिता (IPC) में लिंचिंग जैसी घटनाओं के विरुद्ध कार्रवाई को लेकर किसी तरह का स्पष्ट उल्लेख नहीं है और इन्हें धारा-302 (हत्या), 307 (हत्या का प्रयास), 323 (जान बूझकर घायल करना), 147-148 (दंगा-फसाद), 149 (आज्ञा के विरुद्ध इकट्ठे होना) तथा धारा- 34 (सामान्य आशय) के तहत ही निपटाया जाता है।
- भीड़ द्वारा किसी की हत्या किये जाने पर IPC की धारा 302 और 149 को मिलाकर पढ़ा जाता है और इसी तरह भीड़ द्वारा किसी की हत्या का प्रयास करने पर धारा 307 और 149 को मिलाकर पढ़ा जाता है तथा इसी के तहत कार्यवाही की जाती है।
- CrPC में भी इस संबंध में कुछ स्पष्ट तौर पर नहीं कहा गया है।
- भीड़ द्वारा की गई हिंसा की प्रकृति और उत्प्रेरण सामान्य हत्या से अलग होते हैं इसके बावजूद भारत में इसके लिये अलग से कोई कानून मौजूद नहीं है।

प्रभाव

- मॉब लिंचिंग जैसी घटनाएँ पूर्णत: गैर-कानूनी और संविधान में निहित मूल्यों के विरुद्ध होती हैं। ऐसे में यदि इन पर रोक नहीं लगाई जाती है तो आम जनता का संविधान और न्यायपालिका से विश्वास उठ जाएगा।
- ज्ञात हो कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद-21 में प्रत्येक व्यक्ति को जीवन जीने का अधिकार दिया गया है। मॉब लिंचिंग से व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का हनन होता है।
- साथ ही राज्य की कानून व्यवस्था पर भी सवालिया निशान लगता है। ग्लोबल पीस इंडेक्स 2019 में भारत 163 देशों में से 141वें स्थान पर था।
- यह समाज की एकजुटता और विविधता में एकता के विचार को प्रभावित करता है और आम लोगों के मध्य असंतोष तथा अशांति की भावना को जन्म देता है। इससे समाज में बहुसंख्यक बनाम अल्पसंख्यक का माहौल पैदा होता है और जाति, वर्ग तथा सांप्रदायिक घृणा को बढ़ावा मिलता है।
- यह विदेशी और घरेलू निवेश दोनों को प्रभावित करता है और इससे हमारी अर्थव्यवस्था को काफी नुकसान होता है। कई अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने भारत को भीड़ द्वारा की जाने वाली घटनाओं के खिलाफ चेतावनी दी है।
- इससे आंतरिक प्रवास को बढ़ावा मिलता है और अर्थव्यवस्था प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है।
- इस प्रकार की घटनाओं को रोकने के लिये सार्वजनिक संसाधनों की भी काफी अधिक बर्बादी होती है।

सर्वोच्च न्यायालय के दिशा-निर्देश

- राज्य सरकारें प्रत्येक ज़िले में मॉब लिंचिंग और हिंसा को रोकने के उपायों के लिये एक सीनियर पुलिस अधिकारी को प्राधिकृत करेंगी।
- राज्य सरकारें शीघ्रता से उन ज़िलों, उप-ज़िलों, गाँवों की पहचान करेंगी जहाँ हाल ही में मॉब लिंचिंग की घटनाएँ हुई हैं।
- नोडल अधिकारी मॉब लिंचिंग से संबंधित अंतर ज़िला स्तरीय मुद्दों को राज्य के DGP के समक्ष प्रस्तुत करेगा।
- केंद्र तथा राज्य सरकारों को रेडियो, टेलीविज़न और अन्य सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर यह प्रसारित कराना होगा कि किसी भी प्रकार की मॉब लिंचिंग एवं हिंसा की घटना में शामिल होने पर विधि के अनुसार कठोर दंड दिया जा सकता है।
- विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर प्रसारित ऐसे गैर-ज़िम्मेदार और भड़काऊ संदेशों तथा अन्य सामग्री पर प्रतिबंध लगाना चाहिये जिनसे समाज में मॉब लिंचिंग जैसी घटनाएँ घटित होती हैं। ऐसे संदेश फैलाने वालों पर उचित प्रावधान के अंतर्गत FIR दर्ज करनी चाहिये।
- राज्य सरकारें मॉब लिंचिंग से प्रभावित व्यक्तियों के लिये क्षतिपूर्ति योजना प्रारंभ करेंगी।
- राज्य सरकारें यह सुनिश्चित करेंगी कि पीड़ित के परिवार के किसी भी व्यक्ति का पुन: उत्पीड़न न हो।

राज्य सरकारों के कानून

- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गए दिशा-निर्देशों का पालन करते हुए सर्वप्रथम मणिपुर ने वर्ष 2018 में ही लिंचिंग के विरुद्ध प्रस्ताव पारित किया था। विशेषज्ञों ने तर्क और प्रासंगिकता की दृष्टि से मणिपुर के बिल को काफी अच्छा बताया था। मणिपुर के लिंचिंग विरोधी विधेयक में निम्नलिखित बिंदु शामिल थे:

- विधेयक में यह निश्चित किया गया था कि लिंचिंग जैसे अपराधों को रोकने के लिये प्रत्येक ज़िले में एक नोडल अधिकारी की नियुक्ति हो।
- अपने क्षेत्राधिकार में लिंचिंग के अपराध को रोकने में विफल रहने वाले पुलिस अधिकारियों के लिये जुर्माने तथा कैद की सज़ा का प्रावधान भी किया गया है।
- लिंचिंग संबंधी अपराधों पर मुकदमा चलाने के लिये राज्य सरकारों की अनुमति भी नहीं लेनी होगी।
- साथ ही पीड़ितों या उनके निकट परिजनों को पर्याप्त मौद्रिक मुआवज़ा प्रदान करने की बात भी कही गई है।

- जिसके पश्चात् राजस्थान सरकार ने भी अगस्त 2019 में लिंचिंग विरुद्ध के विधेयक पारित किया। उल्लेखनीय है कि इसी दौरान संसदीय कार्य मंत्री द्वारा सदन में प्रस्तुत किये गए आँकड़ों से यह बात सामने आई थी कि वर्ष 2014 के बाद देश में घटित लिंचिंग घटनाओं में से 78 प्रतिशत घटनाएँ राजस्थान में हुई थीं।
  - राजस्थान सरकार के लिंचिंग विरोधी विधेयक को लेकर विश्लेषकों का कहना है कि इनमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गए कई दिशा-निर्देशों की अनदेखी की गई है, मसलन यह विधेयक लिंचिंग की घटनाओं को रोकने में विफल रहने वाले अधिकारियों के संबंध में कोई प्रावधान नहीं करता।
- राजस्थान के बाद पश्चिम बंगाल ने भी लिंचिंग को रोकने के लिये एक विधेयक पारित किया। पश्चिम बंगाल के विधेयक में किसी व्यक्ति को घायल करने वालों को तीन साल से लेकर आजीवन कारावास तक की सज़ा का प्रावधान है और यदि लिंचिंग से किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो मृत्युदंड या कठोर आजीवन कारावास का प्रावधान भी है।
- मणिपुर, राजस्थान और पश्चिम बंगाल के अतिरिक्त अब तक अन्य किसी भी राज्य ने इस संबंध में कोई कार्रवाई नहीं की है।

आगे की राह

- अभी तक आम हत्या और भीड़ द्वारा की गई हत्या को कानून की दृष्टि में समान माना जाता है, आवश्यक है कि इन दोनों को कानून की दृष्टि से अलग-अलग परिभाषित किया जाए।
- भीड़ द्वारा की गई हत्या या मॉब लिंचिंग की पहचान कर उसके लिये दहेज रोकथाम अधिनियम और पॉस्को की तरह एक सख्त और असरदायक कानून बनाया जाए।
- सोशल मीडिया और इंटरनेट के प्रसार से भारत में अफवाहों के प्रसार में तेज़ी देखी गई है जिससे समस्या और भी गंभीर हो गई है। एक रिसर्च के मुताबिक, 40 फीसदी पढ़े-लिखे युवा खबर की सच्चाई को नहीं परखते और उसे अग्रसारित कर देते हैं, इस संदर्भ में व्यापक जागरूकता की आवश्यकता है।

नोट :